विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरि शताब्दि-दशाब्दि
महोत्सव के उपलक्ष्य में तृतीय खण्ड

अभिधान राजेन्द्र कोष में,

सूक्ति-सुधारस

तृतीय खण्ड

दिव्याशीष प्रदाता :

परम पूज्य, परम कृपालु, विश्वपूज्य
प्रभुश्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा.

आशीषप्रदाता :

राष्ट्रसन्त वर्तमानाचार्यदेवेश
श्रीमद्विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी म. सा.

प्रेरिका :

प. पू. वयोवृद्धा सरलस्वभाविनी
साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा.

लेखिका :

साध्वी डॉ. प्रियदर्शनाश्री,
(एम. ए. पीएच-डी.)

साध्वी डॉ. सुदर्शनाश्री,
(एम. ए. पीएच-डी.)

सुकृत सहयोगिनी
श्री राजेन्द्र जैन महिला मण्डल, भीनमाल (राज.)

प्राप्ति स्थान
श्री मदनराजजी जैन
द्वारा – शा. देवीचन्दजी छगनलालजी
आधुनिक वस्त्र विक्रेता
सदर बाजार, भीनमाल-३४३०२९
फोन : (०२९६९) २०१३२

प्रथम आवृत्ति
वीर सम्वत् : २५२५
राजेन्द्र सम्वत् : ९२
विक्रम सम्वत् : २०५५
ईस्वी सन् : १९९८
मूल्य : ५०-००
प्रतियाँ : २०००

अक्षराङ्कन
लेखित
१०, रूपमाधुरी सोसायटी, माणेकबाग, अहमदाबाद-१५

मुद्रण
सर्वोदय ओफसेट
प्रेमदरवाजा बहार, अहमदाबाद.

अनुक्रम

कहाँ क्या ?

पू. राष्ट्रसन्त आचार्य श्रीमद्
विजय जयन्तसेन सूरीश्वरजी म. सा.

उनका आशीर्वाद राजेन्द्र काव्य विश्वविद्यालय का शिलान्यास-स्तंभ है ।

परम पूज्या सरलस्वभाविनी साध्वीरत्ना
श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा.

1

समर्पण

रवि-प्रभा सम है मुखश्री, चन्द्र सम अति प्रशान्त ।
तिमिर में भटके जनके, दीप उज्जवल कान्त ॥ १ ॥

लघुता में प्रभुता भरी, विश्व-पूज्य मुनीन्द्र ।
करुणा सागर आप थे, यति के बने यतीन्द्र ॥ २ ॥

लोक-मंगली थे कमल, योगीश्वर गुरुराज ।
सुमन-माल सुन्दर सजी, करे समर्पण आज ॥ ३ ॥

अभिधान राजेन्द्र कोष, रचना रची ललाम ।
नित चरणों में आपके, विधियुत् करें प्रणाम ॥ ४ ॥

काव्य-शिल्प समझें नहीं, फिर भी किया प्रयास ।
गुरु-कृपा से यह बने, जन-मन का विश्वास ॥ ५ ॥

प्रियदर्शना की दर्शना, सुदर्शना भी साथ ।
राज रहे राजेन्द्र का, चरण झुकाते माथ ॥ ६ ॥

- श्री राजेन्द्रगुणगीतवेणु
- श्री राजेन्द्रपदपद्मरेणु
साध्वी प्रियदर्शनाश्री
साध्वी सुदर्शनाश्री

2

विश्वविश्रुत है

श्री अभिधान राजेन्द्र कोष ।

विश्व की आश्चर्यकारक घटना है ।

साधन दुर्लभ समय में इतना सारा संगठन, संकलन अपने आप में एक अलौकिक सा प्रतीत होता है। रचनाकार निर्माता ने वर्षों तक इस कोष प्रणयन का चिन्तन किया, मनोयोगपूर्वक मनन किया, पश्चात् इस भगीरथ कार्य को संपादित करने का समायोजन किया ।

महामंत्र नवकार की अगाध शक्ति ! कौन कह सकता है शब्दों में उसकी शक्ति को । उस महामंत्र में उनकी थी परम श्रद्धा सह अनुरक्ति एवं सम्पूर्ण समर्पण के साथ उनकी थी परम भक्ति!

इस त्रिवेणी संगम से संकल्प साकार हुआ एवं शुभारंभ भी हो गया । १४ वर्षों की सतत साधना के बाद निर्मित हुआ यह अभिधान राजेन्द्र कोष।

इसमें समाया है सम्पूर्ण जैन वाङ्मय या यों कहें कि जैन वाङ्मय का प्रतिनिधित्व करता है यह कोष। अंगोपांग से लेकर मूल, प्रकीर्णक, छेद ग्रन्थों के सन्दर्भों से समलंकृत है यह विराट्काय ग्रन्थ ।

इस बृहद् विश्वकोष के निर्माता हैं परम योगीन्द्र सरस्वती पुत्र, समर्थ शासनप्रभावक , सत्क्रिया पालक, शिथिलाचार उन्मूलक, शुद्धसनातन सन्मार्ग प्रदर्शक जैनाचार्य विश्वपूज्य प्रातः स्मरणीय प्रभु श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा !

सागर में रत्नों की न्यूनता नहीं । 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' यह कोष *भी सागर है जो गहरा है, अथाह है और अपार है । यह ज्ञान सिंधु नाना प्रकार* की सूक्ति रत्नों का भंडार है ।

इस ग्रन्थराज ने जिज्ञासुओं की जिज्ञासा शान्त की। मनीषियों की मनीषा में अभिवृद्धि की ।

इस महासागर में मुक्ताओं की कमी नहीं। सूक्तियों की श्रेणिबद्ध पंक्तियाँ प्रतीत होती हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक है जन-जन के सम्मुख 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) ।

मेरी आज्ञानुवर्तिनी विदुषी सुसाध्वी श्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं सुसाध्वीश्री डॉ. सुदर्शनाश्रीजी ने अपनी गुरुभक्ति को प्रदर्शित किया है इस 'सूक्ति-सुधारस' को आलेखित करके । गुरुदेव के प्रति संपूर्ण समर्पित उनके भाव ने ही यह अनूठा उपहार पाठकों के सम्मुख रखने को प्रोत्साहित किया है उनको ।

यह 'सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) जिज्ञासु जनों के लिए अत्यन्त ही सुन्दर है । 'गागर में सागर है' । गुरुदेव की अमर कृति कालजयी कृति है, जो उनकी उत्कृष्ट त्याग भावना की सतत अप्रमत्त स्थिति को उजागर करनेवाली कृति है । निरन्तर ज्ञान-ध्यान में लीन रहकर तपोधनी गुरुदेवश्री 'महतो महियान्' पद पर प्रतिष्ठित हो गए हैं; उन्हें कषायों पर विजयश्री प्राप्त करने में बड़ी सफलता मिली और वे बीसवीं शताब्दि के सदा के लिए संस्मरणीय परमश्रेष्ठ पुरुष बन गए हैं ।

प्रस्तुत कृति की लेखिका डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी अभिनन्दन की पात्रा हैं, जो अहर्निश 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के गहरे सागरमें गोते लगाती रहती हैं । 'जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पेठ' की उक्ति के अनुसार श्रम, समय, मन-मस्तिष्क सभी को सार्थक किया है श्रमणी द्वयने ।

मेरी ओर से हार्दिक अभिनंदन के साथ खूब-खूब बधाई इस कृति की लेखिका साध्वीद्वय को । वृद्धि हो उनकी इस प्रवृत्ति में, यही आकांक्षा ।

राजेन्द्र सूरि जैन ज्ञानमंदिर — *विजय जयन्तसेन सूरि*
अहमदाबाद
दि. २९-४-९८ अक्षय तृतीया

विदुषी डॉ. साध्वीश्री प्रिय-सुदर्शनाश्रीजीम. आदि,

अनुवंदना सुखसाता ।

आपके द्वारा प्रेषित 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरिः जीवन-सौरभ), 'अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) एवं 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका' की पाण्डुलिपियाँ मिली हैं। पुस्तकें सुंदर हैं। आपकी श्रुत भक्ति अनुमोदनीय है। आपका यह लेखनश्रम अनेक व्यक्तियों के लिये चित्त के विश्राम का कारण बनेगा, ऐसा मैं मानता हूँ। आगमिक साहित्य के चिंतन स्वाध्याय में आपका साहित्य मददगार बनेगा।

उत्तरोत्तर साहित्य क्षेत्र में आपका योगदान मिलता रहे, यही मंगल कामना करता हूँ।

उदयपुर

14-5-98

पद्मसागरसूरि

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र

कोबा-382009 (गुज.)

4

जिनशासन में स्वाध्याय का महत्त्व सर्वाधिक है। जैसे देह प्राणों पर आधारित है वैसे ही जिनशासन स्वाध्याय पर। आचार-प्रधान ग्रन्थों में साधु के लिए पन्द्रह घंटे स्वाध्याय का विधान है। निद्रा, आहार, विहार एवं निहार का जो समय है वह भी स्वाध्याय की व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिए है अर्थात् जीवन पूर्ण रूप से स्वाध्यायमय ही होना चाहिए ऐसा जिनशासन का उद्घोष है। वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा इन पाँच प्रभेदों से स्वाध्याय के स्वरूप को दर्शाया गया है, इनका क्रम व्यवस्थित एवं व्यावहारिक है।

श्रमण जीवन एवं स्वाध्याय ये दोनों-दूध में शक्कर की मीठास के समान एकमेक हैं। वास्तविक श्रमण का जीवन स्वाध्यायमय ही होता है। क्षमाश्रमण का अर्थ है 'क्षमा के लिए श्रम रत' और क्षमा की उपलब्धि स्वाध्याय से ही प्राप्त होती है। स्वाध्याय हीन श्रमण क्षमाश्रमण हो ही नहीं सकता। श्रमण वर्ग आज स्वाध्याय रत हैं और उसके प्रतिफल रूप में अनेक साधु-साध्वी आगमज्ञ बने हैं।

प्रातःस्मरणीय विश्व पूज्य श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा ने अभिधान राजेन्द्र कोष के सप्त भागों का निर्माण कर स्वाध्याय का सुफल विश्व को भेंट किया है।

उन सात भागों का मनन चिन्तन कर विदुषी साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजीम. की विनयरत्ना साध्वीजी श्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी ने " अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" को सात खण्डों में निर्मित किया हैं जो आगमों के अनेक रहस्यों के मर्म से ओतप्रोत हैं।

साध्वी द्वय सतत स्वाध्याय मग्ना हैं, इन्हें अध्ययन एवं अध्यापन का इतना रस है कि कभी-कभी आहार की भी आवश्यकता नहीं रहती। अध्ययन-अध्यापन का रस ऐसा है कि जो आहार के रस की भी पूर्ति कर देता है।

'सूक्ति सुधारस' (१ से ७ खण्ड) के माध्यम से इन्होंने प्रवचनसेवा, दादागुरुदेव श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा के वचनों की सेवा, तथा संघ-सेवा का अनुपम कार्य किया है।

'सूक्ति सुधारस' में क्या है ? यह तो यह पुस्तक स्वयं दर्शा रही है। पाठक गण इसमें दर्शित पथ पर चलना प्रारंभ करेंगे तो कषाय परिणति का ह्रास होकर गुणश्रेणी पर आरोहण कर अति शीघ्र मुक्ति सुख के उपभोक्ता बनेंगे; यह निस्संदेह सत्य है ।

साध्वी द्वय द्वारा लिखित ये 'सात खण्ड' भव्यात्मा के मिथ्यात्वमल को दूर करने में एवं सम्यग्दर्शन प्राप्त करवाने में सहायक बनें, यही अंतराभिलाषा.

भीनमाल

वि. संवत् २०५५, वैशाख वदि १० *मुनि जयानंद*

5

लगभग दस वर्ष पूर्व जालोर – स्वर्णगिरितीर्थ – विश्वपूज्य की साधना स्थली पर हमनें 36 दिवसीय अखण्ड मौनपूर्वक आयम्बिल व जप के साथ आराधना की थी, उस समय हमारे हृदय-मन्दिर में विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्र सूरीश्वरजी गुरुदेव श्री की भव्यतम प्रतिमा प्रतिष्ठित हुई, जिसके दर्शन कर एक चलचित्र की तरह हमारे नयन-पट पर गुरुवर की सौम्य, प्रशान्त, करुणार्द्र और कोमल भावमुद्रा सहित मधुर मुस्कान अंकित हो गई। फिर हमें उनके एक के बाद एक अभिधान राजेन्द्र कोष के सप्त भाग दिखाई दिए और उन ग्रन्थों के पास एक दिव्य महर्षि की नयन रम्य छवि जगमगाने लगी। उनके नयन खुले और उन्होंने आशीर्वाद मुद्रा में हमें संकेत दिए! और हम चित्र लिखित-सी रह गईं। तत्पश्चात् आँखें खोली तो न तो वहाँ गुरुदेव थे और न उनका कोष। तभी से हम दोनों ने दृढ़ संकल्प किया कि हम विश्वपूज्य एवं उनके द्वारा निर्मित कोष पर कार्य करेंगी और जो कुछ भी मधु-सञ्चय होगा, वह जनता-जनार्दन को देंगी! विश्वपूज्य का सौरभ सर्वत्र फैलाएँगी। उनका वरदान हमारे समस्त ग्रन्थ-प्रणयन की आत्मा है।

16 जून, सन् 1989 के शुभ दिन 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में, 'सूक्ति-सुधारस' के लेखन -कार्य का शुभारम्भ किया।

वस्तुतः इस ग्रन्थ-प्रणयन की प्रेरणा हमें विश्वपूज्य गुरुदेवश्री की असीम कृपा-वृष्टि, दिव्याशीर्वाद, करुणा और प्रेम से ही मिली है।

'सूक्ति' शब्द सु + उक्ति इन दो शब्दों से निष्पन्न है। सु अर्थात् श्रेष्ठ और उक्ति का अर्थ है कथन। सूक्ति अर्थात् सुकथन। सुकथन जीवन को सुसंस्कृत एवं मानवीय गुणों से अलंकृत करने के लिए उपयोगी है। सैकड़ों दलीलें एक तरफ और एक चुटैल सुभाषित एक तरफ। सुत्तनिपात में कहा है –

'विञ्ञात सारानि सुभासितानि' [1]

सुभाषित ज्ञान के सार होते हैं। दार्शनिकों, मनीषियों, संतों, कवियों तथा साहित्यकारों ने अपने सद्ग्रन्थों में मानव को जो हितोपदेश दिया है तथा

1. सुत्तनिपात – 2/21/6

महर्षि-ज्ञानीजन अपने प्रवचनों के द्वारा जो सुवचनामृत पिलाते हैं - वह संजीवनी औषधितुल्य है ।

निःसंदेह सुभाषित, सुकथन या सूक्तियाँ उत्प्रेरक, मार्मिक, हृदयस्पर्शी, संक्षिप्त, सारगर्भित अनुभूत और कालजयी होती हैं । इसीकारण सुकथनों / सूक्तियों का विद्युत्-सा चमत्कारी प्रभाव होता है । सूक्तियों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महर्षि वशिष्ठ ने योगवाशिष्ठ में कहा है — "महान् व्यक्तियों की सूक्तियाँ अपूर्व आनन्द देनेवाली, उत्कृष्टतर पद पर पहुँचानेवाली और मोह को पूर्णतया दूर करनेवाली होती हैं ।"[1] यही बात शब्दान्तर में आचार्य शुभचन्द्र ने ज्ञानार्णव में कही है — "मनुष्य के अन्तर्हृदय को जगाने के लिए, सत्यासत्य के निर्णय के लिए, लोक-कल्याण के लिए, विश्व-शान्ति और सम्यक् तत्त्व का बोध देने के लिए सत्पुरुषों की सूक्ति का प्रवर्तन होता है ।" [2]

सुवचनों, सुकथनों को धरती का अमृतरस कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी । कालजयी सूक्तियाँ वास्तव में अमृतरस के समान चिरकाल से प्रतिष्ठित रही हैं और अमृत के सदृश ही उन्होंने संजीवनी का कार्य भी किया है । इस संजीवनी रस के सेवन मात्र से मृतवत् मूर्ख प्राणी, जिन्हें हम असल में मरे हुए कहते हैं, जीवित हो जाते हैं, प्राणवान् दिखाई देने लगते हैं । मनीषियों का कथन है कि जिसके पास ज्ञान है, वही जीवित है, जो अज्ञानी है वह तो मरा हुआ ही होता है । इन मृत प्राणियों को जीवित करने का अमृत महान् ग्रन्थ अभिधान-राजेन्द्र कोष में प्राप्त होगा । शिवलीलार्णव में कहा है — "जिस प्रकार बालू में पड़ा पानी वहीं सूख जाता है, उसीप्रकार संगीत भी केवल कान तक पहुँचकर सूख जाता है, किन्तु कवि की सूक्ति में ही ऐसी शक्ति है, कि वह सुगन्धयुक्त अमृत के समान हृदय के अन्तस्तल तक पहुँचकर मन को सदैव आह्लादित करती रहती है । [3] इसीलिए 'सुभाषितों का रस अन्य रसों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है ।' [4] अमृतरस छलकाती ये सूक्तियाँ

---

1. अपूर्वाह्लाद दायिन्यः उच्चैस्तर पदाश्रयाः ।
अतिमोहापहारिण्यः सूक्तयो हि महियसाम् ॥
योगवाशिष्ठ 5/4/5

2. प्रबोधाय विवेकाय, हिताय प्रशमाय च ।
सम्यक् तत्त्वोपदेशाय, सतां सूक्ति प्रवर्तते ॥
ज्ञानार्णव

3. कर्णगतं शुष्यति कर्ण एव, संगीतकं सैकत वारिरीत्या ।
आनन्दयत्यन्तरनुप्रविष्य, सूक्ति कवे रेव सुधा सगन्धा ॥ — शिवलीलार्णव

4. नूनं सुभाषित रसोन्यः रसातिशायी — योग वाशिष्ठ 5/4/5

अन्तस्तल को स्पर्श करती हुई प्रतीत होती है । वस्तुतः जीवन को सुरभित व सुशोभित करनेवाला सुभाषित एक अनमोल रत्न है ।

सुभाषित में जो माधुर्य रस होता है, उसका वर्णन करते हुए कहा है – "सुभाषित का रस इतना मधुर [मीठा] है कि उसके आगे द्राक्षा म्लानमुखी हो गई । मिश्री सूखकर पत्थर जैसी किरकिरी हो गई और सुधा भयभीत होकर स्वर्ग में चली गई ।" [1]

अभिधान राजेन्द्र कोष की ये सूक्तियाँ अनुभव के 'सार' जैसी, समुद्र-मन्थन के 'अमृत' जैसी, दधि-मन्थन के 'मक्खन' जैसी और मनीषियों के आनन्ददायक 'साक्षात्कार' जैसी "देखन में छोटे लगे, घाव करे गम्भीर" की उक्ति को चरितार्थ करती हैं । इनका प्रभाव गहन हैं । ये अन्तर ज्योति जगाती हैं ।

वास्तव में, अभिधान राजेन्द्र कोष एक ऐसी अमरकृति है, जो देश-विदेश में लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी है । यह एक ऐसा विराट् शब्द-कोष है, जिसमें परम मधुर अर्धमागधी भाषा, इक्षुरस के समान पुष्टिकारक प्राकृतभाषा और अमृतवर्षिणी संस्कृत भाषा के शब्दों का सरस व सरल निरुपण हुआ है ।

विश्वपूज्य परमाराध्यपाद मंगलमूर्ति गुरुदेव श्रीमद् राजेन्द्र-सूरीश्वरजी महाराजा साहेब पुरातन ऋषि परम्परा के महामुनीश्वर थे, जिनका तपोबल एवं ज्ञान-साधना अनुपम, अद्वितीय थी । इस प्रज्ञामहर्षि ने सन् 1890 में इस कोष का श्रीगणेश किया तथा सात भागों में 14 वर्षों तक अपूर्व स्वाध्याय, चिन्तन एवं साधना से सन् 1903 में परिपूर्ण किया । लोक-मङ्गल का यह कोष सुधा-सिन्धु है ।

इस कोष में सूक्तियों का निरुपण-कौशल पण्डितों, दार्शनिकों और साधारण जनता-जनार्दन के लिए समान उपयोगी है ।

इस कोष की महनीयता को दर्शाना सूर्य को दीपक दिखाना है ।

हमने अभिधान राजेन्द्र कोष की लगभग 2700 सूक्तियों का हिन्दी सरलार्थ प्रस्तुत कृति 'सूक्ति सुधारस' के सात खण्डों में किया है ।

'सूक्ति सुधारस' अर्थात् अभिधान राजेन्द्र-कोष-सिन्धु के मन्थन से निःसृत अमृत-रस से गूँथा गया शाश्वत सत्य का वह भव्य गुलदस्ता है, जिसमें 2667 सुकथनों/सूक्तियों की मुस्कराती कलियाँ खिली हुई हैं ।

ऐसे विशाल और विराट् कोष-सिन्धु की सूक्ति रूपी मणि-रत्नों को

---

1. द्राक्षाम्लानमुखी जाता, शर्करा चाश्मतां गता,
सुभाषित रसस्याग्रे, सुधा भीता दिवंगता ॥

खोजना कुशल गोताखोर से सम्भव है। हम निपट अज्ञानी हैं — न तो साहित्य-विभूषा को जानती हैं, न दर्शन की गरिमा को समझती हैं और न व्याकरण की बारीकी समझती हैं, फिर भी हमने इस कोष के सात भागों की सूक्तियों को सात खण्डों में व्याख्यायित करने की बालचेष्टा की है। यह भी विश्वपूज्य के प्रति हमारी अखण्ड भक्ति के कारण।

हमारा बाल प्रयास केवल ऐसा ही है —

वक्तुं गुणान् गुण समुद्र ! शशाङ्ककान्तान् ।
कस्ते क्षमः सुरगुरु प्रतिमोऽपि बुद्ध्या
कल्पान्त काल पवनोद्धत नक्र चक्रं ।
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥

हमने अपनी भुजाओं से कोष रूपी विशाल समुद्र को तैरने का प्रयास केवल विश्व-विभु परम कृपालु गुरुदेवश्री के प्रति हमारी अखण्ड श्रद्धा और प.पू. परमाराध्यपाद प्रशान्तमूर्ति कविरत्न आचार्य देवेश श्रीमद् विजय विद्याचन्द्र-सूरीश्वरजी म.सा. तत्पट्टालंकार प. पूज्यपाद साहित्यमनीषी राष्ट्रसन्त श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराजा साहेब की असीमकृपा तथा परम पूज्या परमोपकारिणी गुरुवर्या श्री हेतश्रीजी म.सा. एवं परम पूज्या सरलस्वभाविनी स्नेह-वात्सल्यमयी साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा. [हमारी सांसारिक पूज्या दादीजी] की प्रीति से किया है। जो कुछ भी इसमें हैं, वह इन्हीं पञ्चमूर्ति का प्रसाद है।

हम प्रणत हैं उन पंचमूर्ति के चरण कमलों में, जिनके स्नेह-वात्सल्य व आशीर्वचन से प्रस्तुत ग्रन्थ साकार हो सका है।

हमारी जीवन-क्यारी को सदा सींचनेवाली परम श्रद्धेया [हमारी संसारपक्षीय दादीजी] पूज्यवर्या श्री के अनन्य उपकारों को शब्दों के दायरे में बाँधने में हम असमर्थ हैं। उनके द्वारा प्राप्त अमित वात्सल्य व सहयोग से ही हमें सतत ज्ञान-ध्यान, पठन-पाठन, लेखन व स्वाध्यायादि करने में हरतरह की सुविधा रही है। आपके इन अनन्त उपकारों से हम कभी भी उऋण नहीं हो सकतीं।

हमारे पास इन गुरुजनों के प्रति आभार-प्रदर्शन करने के लिए न तो शब्द है, न कौशल है, न कला है और न ही अलंकार ! फिर भी हम इनकी करुणा, कृपा और वात्सल्य का अमृतपान कर प्रस्तुत ग्रंथ के आलेखन में सक्षम बन सकी हैं।

हम उनके पद-पद्मों में अनन्यभावेन समर्पित हैं, नतमस्तक हैं।

इसमें जो कुछ भी श्रेष्ठ और मौलिक है, उस गुरु-सत्ता के शुभाशीष का ही यह शुभ फल है।

विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद् राजेन्द्रसूरि शताब्दि-दशाब्दि महोत्सव के उपलक्ष्य में अभिधान राजेन्द्र कोष के सुगन्धित सुमनों से श्रद्धा-भक्ति के स्वर्णिम धागे से गूंथी यह तृतीय सुमनमाला उन्हें पहना रही हैं, विश्वपूज्य प्रभु हमारी इस नन्हीं माला को स्वीकार करें।

हमें विश्वास है यह श्रद्धा-भक्ति-सुमन जन-जीवन को धर्म, नीति-दर्शन-ज्ञान-आचार, राष्ट्रधर्म, आरोग्य, उपदेश, विनय-विवेक, नम्रता, तप-संयम, सन्तोष-सदाचार, क्षमा, दया, करुणा, अहिंसा-सत्य आदि की सौरभ से महकाता रहेगा और हमारे तथा जन-जन के आस्था के केन्द्र विश्वपूज्य की यशः सुरभि समस्त जगत् में फैलाता रहेगा।

इस ग्रन्थ में त्रुटियाँ होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि हर मानव कृति में कुछ न कुछ त्रुटियाँ रह ही जाती हैं। इसीलिए लेनिन ने ठीक ही कहा है: त्रुटियाँ तो केवल उसी से नहीं होगी जो कभी कोई काम करे ही नहीं।

गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति सज्जनाः॥

- श्री राजेन्द्रगुणगीतवेणु
- श्री राजेन्द्रपदपद्मरेणु

डॉ. प्रियदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.-डी.
डॉ. सुदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.-डी.

6

हम परम पूज्य राष्ट्रसन्त आचार्यदेव श्रीमद् जयन्तसेन सूरीश्वरजी म. सा. "मधुकर", परम पूज्य राष्ट्रसन्त आचार्यदेव श्रीमद् पद्मसागर सूरीश्वरजी म. सा. एवं प. पू. मुनिप्रवर श्री जयानन्द विजयजी म. सा. के चरण कमलों में वंदना करती हैं, जिन्होंने असीम कृपा करके अपने मन्तव्य लिखकर हमें अनुगृहीत किया है। हमें उनकी शुभप्रेरणा व शुभाशीष सदा मिलती रहे, यही करबद्ध प्रार्थना है।

इसके साथ ही हमारी सुविनीत गुरुबहनें सुसाध्वीजी श्री आत्मदर्शनाश्रीजी, श्रीसम्यग्दर्शनाश्रीजी (सांसारिक सहोदरबहनें), श्री चारूदर्शनाश्रीजी एवं श्री प्रीतिदर्शनाश्रीजी (एम.ए.) की शुभकामना का सम्बल भी इस ग्रन्थ के प्रणयन में साथ रहा है। अतः उनके प्रति भी हृदय से आभारी हैं।

हम पद्म विभूषण, पूर्व भारतीय राजदूत ब्रिटेन, विश्वविख्यात विधिवेत्ता एवं महान् साहित्यकार माननीय डॉ. श्रीमान् लक्ष्मीमल्लजी सिंघवी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हैं, जिन्होंने अति भव्य मन्तव्य लिखकर हमें प्रेरित किया है। तदर्थ हम उनके प्रति हृदय से अत्यन्त आभारी हैं।

इस अवसर पर हिन्दी-अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध मनीषी सरलमना माननीय डो. श्री जवाहरचन्द्रजी पटनी का योगदान भी जीवन में कभी नहीं भुलाया जा सकता है। पिछले दो वर्षों से सतत उनकी यही प्रेरणा रही कि आप शीघ्रातिशीघ्र 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' [1 से 7 खण्ड], 'अभिधान राजेन्द्र कोष में जैनदर्शन वाटिका', 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम' और 'विश्वपूज्य' (श्रीमद राजेन्द्रसूरिः जीवन-सौरभ) आदि ग्रन्थों को सम्पन्न करें। उनकी सक्रिय प्रेरणा, सफल निर्देशन, सतत प्रोत्साहन व आत्मीयतापूर्ण सहयोग-सुझाव के कारण ही ये ग्रन्थ [1 से 10 खण्ड] यथासमय पूर्ण हो सके हैं। पटनी सा0 ने अपने अमूल्य क्षणों का सदुपयोग प्रस्तुत ग्रन्थ के अवलोकन में किया। हमने यह अनुभव किया कि देहयष्टि वार्धक्य के कारण कृश होती है, परन्तु आत्मा अजर अमर है। गीता में कहा है :

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारूतः ॥
कर्मयोगी का यही अमर स्वरूप है।

हम साध्वीद्वय उनके प्रति हृदय से कृतज्ञा हैं । इतना ही नहीं, अपितु प्रस्तुत ग्रन्थों के अनुरूप अपना आमुख लिखने का कष्ट किया तदर्थ भी हम आभारी हैं।

उनके इस प्रयास के लिए हम धन्यवाद या कृतज्ञता ज्ञापन कर उनके अमूल्य श्रम का अवमूल्यन नहीं करना चाहतीं । बस, इतना ही कहेंगी कि इस सम्पूर्ण कार्य के निमित्त उन्हें ज्ञान के इस अथाह सागर में बार-बार डुबकियाँ लगाने का जो सुअवसर प्राप्त हुआ, वह उनके लिए महान् सौभाग्य है ।

तत्पश्चात् अनवरत शिक्षा के क्षेत्र में सफल मार्गदर्शन देनेवाले शिक्षा गुरुजनों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करना हमारा परम कर्तव्य है । बी. ए. [प्रथम खण्ड] से लेकर आजतक हमारे शोध निर्देशक माननीय डॉ. श्री अखिलेशकुमारजी राय सा. द्वारा सफल निर्देशन, सतत प्रोत्साहन एवं निरन्तर प्रेरणा को विस्मृत नहीं किया जा सकता, जिसके परिणाम स्वरूप अध्ययन के क्षेत्र में हम प्रगतिपथ पर अग्रसर हुईं । इसी कड़ी में श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान वाराणसी के निदेशक माननीय डॉ. श्री सागरमलजी जैन के द्वारा प्राप्त सहयोग को भी जीवन में कभी भी भुलाया नहीं जा सकता, क्योंकि पार्श्वनाथ विद्याश्रम के परिसर में सालभर रहकर हम साध्वी द्वय ने 'आचारांग का नीतिशास्त्रीय अध्ययन' और 'आनन्दघन का रहस्यवाद' — इन दोनों शोध-प्रबन्ध-ग्रन्थों को पूर्ण किया था, जो पीएच.डी. की उपाधि के लिए अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र) ने स्वीकृत किये । इन दोनों शोध-प्रबन्ध ग्रन्थों को पूर्ण करने में डॉ. जैन सा. का अमूल्य योगदान रहा है । इतना ही नहीं, प्रस्तुत ग्रन्थों के अनुरूप मन्तव्य लिखने का कष्ट किया । तदर्थ भी हम आभारी हैं।

इनके अतिरिक्त विश्रुत पण्डितवर्य माननीय श्रीमान् दलसुख भाई मालवणियाजी, विद्वद्वर्य डॉ. श्री नेमीचन्दजी जैन, शास्त्रसिद्धान्त रहस्यविद् ? पण्डितवर्य श्री गोविन्दरामजी व्यास, विद्वद्वर्य पं. श्री जयनन्दनजी झा, पण्डितवर्य श्री हीरालालजी शास्त्री एम.ए., हिन्दी अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध मनीषी श्री भागचन्दजी जैन, एवं डॉ. श्री अमृतलालजी गाँधी ने भी मन्तव्य लिखकर स्नेहपूर्ण उदारता दिखाई, तदर्थ हम उन सबके प्रति भी हृदय से अत्यन्त आभारी हैं ।

अन्त में उन सभी का आभार मानती हैं जिनका हमें प्रत्यक्ष व परोक्ष सहकार / सहयोग मिला है ।

यह कृति केवल हमारी बालचेष्टा है, अतः सुविज्ञ, उदारमना सज्जन हमारी त्रुटियों के लिए क्षमा करें ।

पौष शुक्ला सप्तमी — ***डॉ. प्रियदर्शनाश्री***

5 जनवरी, 1998 — ***डॉ. सुदर्शनाश्री***

7

सुकृत सहयोगिनी

श्रुतज्ञानानुरागिणी श्राविकारत्न, भीनमाल, [राज.]

भारतीय संस्कृति में नारी की गरिमा के लिए मनुस्मृति का यह कथन अक्षरशः सत्य है -

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते
रमन्ते तत्र देवताः ।

यथार्थ में श्री राजेन्द्र जैन महिला मंडल भीनमाल की श्रुतज्ञान के प्रति रूचि अनुमोदनीय है, उसी का दिव्यफल है इस पुस्तक का प्रकाशन ।

इस सुकृत में सहयोग देकर महिला मंडल ने नारी महिमा को अक्षुण्ण रखा है ।

वे "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति सुधारस" (तृतीय खंड) का प्रकाशन करवा रही हैं । उनकी विद्यानुरागिता की हम भूरिभूरि प्रशंसा करती हैं । भीनमाल निवासिनी इन सुश्राविकाओं को प्रस्तुत पुस्तक-मुद्रण में अनुपम सहयोग के लिए प. पूज्या वयोवृद्धा सरलस्वभाविनी वात्सल्यमयी साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा. (पू. दादीजी म.सा.) आशीष देती हैं तथा साथ ही हम भी इन्हें धन्यवाद देती हुई यह मंगलकामना करती हैं कि इनके अन्तःकरण में यथावत् ज्ञानानुराग, विद्याप्रेम और श्रुतज्ञान के प्रति आतंरिक लगाव-रूचि व अनुराग दिन दुगुना रात चौगुना वृद्धिगत होता रहें । यही अभ्यर्थना ।

— डॉ. प्रियदर्शनाश्री
— डॉ. सुदर्शनाश्री

8

आमुख

— डॉ. जवाहरचन्द्र पटनी,

एम. ए. (हिन्दी-अंग्रेजी), पीएच. डी., बी.टी.

विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी विरले सन्त थे। उनके जीवन-दर्शन से यह ज्ञात होता है कि वे लोक मंगल के क्षीर-सागर थे। उनके प्रति मेरी श्रद्धा-भक्ति तब विशेष बढ़ी, जब मैंने कलिकाल कल्पतरू श्री वल्लभसूरिजी पर 'कलिकाल कल्पतरू' महाग्रन्थ का प्रणयन किया, जो पीएच. डी. उपाधि के लिए जोधपुर विश्वविद्यालय ने स्वीकृत किया। विश्वपूज्य प्रणीत 'अभिधान राजेन्द्र कोष' से मुझे बहुत सहायता मिली। उनके पुनीत पद-पद्मों में कोटिशः वन्दन !

फिर पूज्या डॉ. साध्वी द्वय श्री प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी म. के ग्रन्थ — 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका', 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' [1 से 7 खण्ड], 'विश्वपूज्य' [श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ), 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम', 'सुगन्धित सुमन', 'जीवन की मुस्कान' एवं 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' आदि ग्रन्थों का अवलोकन किया। विदुषी साध्वी द्वय ने विश्वपूज्य की तपश्चर्या, कर्मठता एवं कोमलता का जो वर्णन किया है, उससे मैं अभिभूत हो गया और मेरे सम्मुख इस भोगवादी आधुनिक युग में पुरातन ऋषि-महर्षि का विराट् और विनम्र करुणार्द्र तथा सरल, लोक-मंगल का साक्षात् रूप दिखाई दिया।

श्री विश्वपूज्य इतने दृढ़ थे कि भयंकर झंझावातों और संघर्षों में भी अडिग रहे। सर्वज्ञ वीतराग प्रभु के परमपुनीत स्मरण से वे अपनी नन्हीं देह-किश्ती को उफनते समुद्र में निर्भय चलाते रहें। स्मरण हो आता है, परम गीतार्थ महान् आचार्य मानतुंगसूरिजी रचित महाकाव्य भक्तामर का यह अमर श्लोक —

**'अम्भो निधौ क्षुभित भीषण नक्र चक्र,
पाठीन पीठ भय दोल्बण वाडवाग्नौ।
रङ्गत्तरंग शिखर स्थित यान पात्रा —
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति॥'**

हे स्वामिन् ! क्षुब्ध बने हुए भयंकर मगरमच्छों के समूह और पाठीन तथा पीठ जाति के मत्स्य व भयंकर वड़वानल अग्नि जिसमें है, ऐसे समुद्र में जिनके जहाज लहरों के अग्रभाग पर स्थित हैं; ऐसे जहाजवाले लोग आपका मात्र स्मरण करने से ही भयरहित होकर निर्विघ्नरूप से इच्छित स्थान पर पहुँचते हैं ।

विदुषी डॉ. साध्वी द्वय ने विश्वपूज्य के विराट् और कोमल जीवन का यथार्थ वर्णन किया है । उससे यह सहज प्रतीति होती है कि विश्वपूज्य कर्मयोगी महर्षि थे, जिन्होंने उस युग में व्याप्त भ्रष्टाचार और आडम्बर को मिटाने के लिए ग्राम-ग्राम, नगर-नगर, वन-उपवन में पैदल विहार किया । व्यसनमुक्त समाज के निर्माण में अपना समस्त जीवन समर्पित कर दिया ।

विदुषी लेखिकाओंने यह बताया है कि इस महर्षि ने व्यक्ति और समाज को सुसंस्कृत करने हेतु सदाचार-सुचरित्र पर बल दिया तथा सत्साहित्य द्वारा भारतीय गौरवशालिनी संस्कृति को अपनाने के लिए अभिप्रेरित किया ।

इस महर्षि ने हिन्दी में भक्तिरस-पूर्ण स्तवन, पद एवं सज्झायादि गीत लिखे हैं । जो सर्वजनहिताय, स्वान्तः सुखाय और भक्तिरस प्रधान हैं । इनकी समस्त कृतियाँ लोकमंगल की अमृत गगरियाँ हैं ।

गीतों में शास्त्रीय संगीत एवं पूजा-गीतों की लावणियाँ हैं जिनमें माधुर्य भरपूर हैं । विश्वपूज्य ने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा एवं दृष्टान्त आदि अलंकारों का अपने काव्य में प्रयोग किया है, जो अप्रयास है । ऐसा लगता है कि कविता उनकी हृदय वीणा पर सहज ही झंकृत होती थी । उन्होंने यद्यपि स्वान्तः सुखाय गीत रचना की है, परन्तु इनमें लोकमाङ्गल्य का अमृत स्रवित होता है ।

उनके तपोमय जीवन में प्रेम और वात्सल्य की अमी-वृष्टि होती है ।

विश्वपूज्य अर्धमागधी, प्राकृत एवं संस्कृत भाषाओं के अद्वितीय महापण्डित थे । उनकी अमरकृति — 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में इन तीन भाषाओं के शब्दों की सारगर्भित और वैज्ञानिक व्याख्याएँ हैं । यह केवल पण्डितवरों का ही चिन्तामणि रत्न नहीं है, अपितु जनसाधारण को भी इस अमृत-सरोवर का अमृत-पान करके परम तृप्ति का अनुभव होता है । उदाहरण के लिए — जैनधर्म में 'नीवि' और 'गहुँली' शब्द प्रचलित हैं । इन शब्दों की व्याख्या मुझे कहीं भी नहीं मिली । इन शब्दों का समाधान इस कोष में है । 'नीवि' अर्थात् नियमपालन करते हुए विधिपूर्वक आहार लेना । गहुँली गुरु-भगवंतों के शुभागमन पर मार्ग में अक्षत का स्वस्तिक करके उनकी वधामणी करते हैं और गुरुवर के प्रवचन के पश्चात् गीत द्वारा गहुँली गीत गाया जाता है ।

इनकी व्युत्पत्ति-व्याख्या 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में मिलीं । पुरातनकाल में गेहूँ का स्वस्तिक करके गुरुजनों का सत्कार किया जाता था । कालान्तर में अक्षत-चावल का प्रचलन हो गया । यह शब्द योगरूढ़ हो गया, इसलिए गुरु भगवंतों के सम्मान में गाया जानेवाला गीत भी गहुँली हो गया । स्वर्ण मोहरों या रत्नों से गहुँली क्यों न हो, वह गहुँली ही कही जाती है । भाषा विज्ञान की दृष्टि से अनेक शब्द जिनवाणी की गंगोत्री में लुढ़क-लुढ़क कर, घिस-घिस कर शालिग्राम बन जाते हैं । विश्वपूज्य ने प्रत्येक शब्द के उद्‌गम-स्रोत की गहन व्याख्या की है । अतः यह कोष वैज्ञानिक है, साहित्यकारों एवं कवियों के लिए रसात्मक है तथा जनसाधारण के लिए शिव-प्रसाद है ।

जब कोष की बात आती है तो हमारा मस्तक हिमगिरि के समान विराट् गुरुवर के चरण-कमलों में श्रद्धावनत हो जाता है । षष्टिपूर्ति के तीन वर्ष बाद 63 वर्ष की वृद्धावस्था में विश्वपूज्य ने '***अभिधान राजेन्द्र कोष***' का श्रीगणेश किया और 14 वर्ष के अनवरत परिश्रम व लगन से 76 वर्ष की आयु में इसे परिसम्पन्न किया ।

इनके इस महत्दान का मूल्याङ्कन करते हुए मुझे महर्षि दधीचि की पौराणिक कथा का स्मरण हो आता है, जिसमें इन्द्र ने देवासुर संग्राम में देवों की हार और असुरों की जय से निराश होकर इस महर्षि से अस्थिदान की प्रार्थना की थी । सत् विजयाकांक्षा की मंगल-भावना से इस महर्षि ने अनशन तप से देह सुखाकर अस्थिदान इन्द्र को दिया था, जिससे वज्रायुध बना । इन्द्र ने वज्रायुध से असुरों को पराजित किया । इसप्रकार सत् की विजय और असत् की पराजय हुई । 'सत्यमेव जयते' का उद्‌घोष हुआ ।

सचमुच यह कोष वज्रायुध के समान सत्य की रक्षा करनेवाला और असत्य का विध्वंस करनेवाला है ।

विदुषी साध्वी द्वय ने इस महाग्रन्थ का मन्थन करके जो अमृत प्राप्त किया है, वह जनता-जनार्दन को समर्पित कर दिया है ।

सारांश में - यह ग्रन्थ 'सत्यं-शिवं-सुंदरम्' की परमोज्ज्वल ज्योति सब युगों में जगमगाता रहेगा — यावत्चन्द्रदिवाकरौ ।

इस कोष की लोकप्रियता इतनी है कि साण्डेराव ग्राम (जिला-पाली-राजस्थान) के लघु पुस्तकालय में भी इसके नवीन संस्करण के सातों भाग विद्यमान हैं । यही नहीं, भारत के समस्त विश्वविद्यालयों, श्रेष्ठ महाविद्यालयों तथा पाश्चात्त्य देशों के विद्या-संस्थानों में ये उपलब्ध हैं । इनके बिना विश्वविद्यालय और शोध-संस्थान रिक्त लगते हैं ।

विदुषी साध्वी द्वय निःसंदेह यशोपात्रा हैं, क्योंकि उन्होंने विश्वपूज्य के पाण्डित्य को ही अपने ग्रन्थों में नहीं दर्शाया है; अपितु इनके लोक-माङ्गल्य का भी प्रशस्त वर्णन किया है ।

ये महान् कर्मयोगी पत्थरों में फूल खिलाते हुए, मरूभूमि में गंगा-जमुना की पावन धाराएँ प्रवाहित करते हुए, बिखरे हुए समाज को कलह के काँटों से बाहर निकाल कर प्रेम-सूत्र में बाँधते हुए, पीड़ित प्राणियों की वेदना मिटाते हुए, पर्यावरण - शुद्धि के लिए आत्म-जागृति का पाञ्चजन्य शंख बजाते हुए 80 वर्ष की आयु में प्रभु शरण में कल्पपुष्प के समान समर्पित हो गए ।

श्री वाल्मीकि ने रामायण में यह बताया है कि भगवान् राम ने 14 वर्षो के वनवास काल में अछूतों का उद्धार किया, दुःखी-पीड़ित प्राणियों को जीवन-दान दिया, असुर प्रवृत्ति का नाश किया और प्राणि-मैत्री की रसवन्ती गंगधारा प्रवाहित की । इस कालजयी युगवीर आचार्य ने इसीलिए 14 वर्ष कोष की रचना में लगाये होंगे । 14 वर्ष शुभ काल है — मंगल विधायक है । महर्षियों के रहस्य को महर्षि ही जानते हैं ।

लाखों-करोड़ों मनुष्यों का प्रकाश-दीप बुझ गया, परन्तु वह बुझा नहीं है । वह समस्त जगत् के जन-मानसों में करूणा और प्रेम के रूप में प्रदीप्त हैं ।

विदुषी साध्वी द्वय के ग्रन्थों को पढ़कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि विश्वपूज्य केवल त्रिस्तुतिक आम्नाय के ही जैनाचार्य नहीं थे, अपितु समस्त जैन समाज के गौरव किरीट थे, वे हिन्दुओं के सन्त थे, मुसलमानों के फकीर और ईसाइयों के पादरी । वे जगद्गुरु थे । विश्वपूज्य थे और हैं ।

विदुषी डॉ. साध्वी द्वय की भाषा-शैली वसन्त की परिमल के समान मनोहारिणी है । भावों को कल्पना और अलंकारों से इक्षुरस के समान मधुर बना दिया है । समरसता ऐसी है जैसे — सुरसरि का प्रवाह ।

दर्शन की गम्भीरता भी सहज और सरल भाषा-शैली से सरस बन गयी है ।

इन विदुषी साध्वियों के मंगल-प्रसाद से समाज सुसंस्कारों के प्रशस्त-पथ पर अग्रसर होगा । भविष्य में भी ये साध्वियाँ तृष्णा तृषित आधुनिक युग को अपने जीवन-दर्शन एवं सत्साहित्य के सुगन्धित सुमनों से महकाती रहेंगी ! यही शुभेच्छा !

पूज्या साध्वीजी द्वय को विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. की पावन प्रेरणा प्राप्त हुई, इससे इन्होंने इन अभिनव ग्रन्थों का प्रणयन किया ।

यह सच है कि रवि-रश्मियों के प्रताप से सरोवर में सरोज सहज ही प्रस्फुटित होते हैं। वासन्ती पवन के हलके से स्पर्श से सुमन सौरभ सहज ही प्रसृत होते हैं। ऐसी ही विश्वपूज्य के वात्सल्य की परिमल इनके ग्रन्थों को सुरभित कर रही हैं। उनकी कृपा इनके ग्रन्थों की आत्मा है।

जिन्हें महाज्ञानी साहित्यमनीषी राष्ट्रसन्त प. पू. आचार्यदेवेश श्रीमद्जयन्तसेनसूरीश्वरजी म. सा. का आर्शीवाद और परम पूज्या जीवन निर्मात्री (सांसारिक दादीजी) साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. का अमित वात्सल्य प्राप्त हों, उनके लिए ऐसे ग्रन्थों का प्रणयन सहज और सुगम क्यों न होगा ? निश्चय ही।

वात्सल्य भाव से मुझे आमुख लिखने का आदेश दिया पूज्या साध्वी द्वय ने। उसके लिए आभारी हूँ, यद्यपि मैं इसके योग्य किञ्चित् भी नहीं हूँ। इति शुभम् !

पौष शुक्ला सप्तमी
5 जनवरी, 1998
कालन्द्री
जिला-सिरोही (राज.)

पूर्वप्राचार्य
श्री पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज,
फालना (राज.)

— डो. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

(पद्म विभूषण, पूर्व भारतीय राजदूत-ब्रिटेन)

आदरणीया डॉ. प्रियदर्शनाजी एवं डॉ. सुदर्शनाजी साध्वीद्वय ने ''विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ)', ''अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्तिसुधारस'' (1 से 7 खण्ड), एवं अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका'' की रचना में जैन परम्परा की यशोगाथा की अमृतमय प्रशस्ति की है। ये ग्रंथ विदुषी साध्वी-द्वय की श्रद्धा, निष्ठा, शोध एवं दृष्टि-सम्पन्नता के परिचायक एवं प्रमाण हैं। एक प्रकार से इस ग्रंथत्रयी में जैन-परम्परा की आधारभूत रत्नत्रयी का प्रोज्ज्वल प्रतिबिम्ब है। युगपुरुष, प्रज्ञामहर्षि, मनीषी आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के व्यक्तित्व और कृतित्व के विराट् क्षितिज और धरातल की विहंगम छवि प्रस्तुत करते हुए साध्वी-द्वय ने इतिहास के एक शलाकापुरुष की यश-प्रतिमा की संरचना की है, उनकी अप्रतिम उपलब्धियों के ज्योतिर्मय अध्याय को प्रदीप्त और रेखांकित किया है। इन ग्रंथों की शैली साहित्यिक है, विवेचन विश्लेषणात्मक है, संप्रेषण रस-सम्पन्न एवं मनोहारी है और रेखांकन कलात्मक है।

पुण्य श्लोक प्रातःस्मरणीय आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी अपने जन्म के नाम के अनुसार ही वास्तव में 'रत्नराज' थे। अपने समय में वे जैनपरम्परा में ही नहीं बल्कि भारतीय विद्या के विश्रुत विद्वान् एवं विद्वत्ता के शिरोमणि थे। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में सागर की गहराई और पर्वत की ऊँचाई विद्यमान थी। इसीलिए उनको विश्वपूज्य के अलंकरण से विभूषित करते हुए वह अलंकरण ही अलंकृत हुआ। भारतीय वाङ्मय में ''अभिधान राजेन्द्र कोष'' एक अद्वितीय, विलक्षण और विराट् कीर्तिमान है जिसमें संस्कृत, प्राकृत एवं अर्धमागधी की त्रिवेणी भाषाओं और उन भाषाओं में प्राप्त विविध परम्पराओं की सूक्तियों की सरल और सांगोपांग व्याख्याएँ हैं, शब्दों का विवेचन और दार्शनिक संदर्भों की अक्षय सम्पदा है। लगभग ६० हजार शब्दों की व्याख्याओं एवं साढ़े चार लाख श्लोकों के ऐश्वर्य से महिमामंडित यह ग्रंथ जैन परम्परा एवं समग्र भारतीय विद्या का अपूर्व भंडार है। साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शनाश्री एवं डॉ. सुदर्शनाश्री की यह प्रस्तुति एक ऐसा साहसिक सारस्वत

प्रयास है जिसकी सराहना और प्रशस्ति में जितना कहा जाय वह स्वल्प ही होगा, अपर्याप्त ही माना जायगा। उनके पूर्वप्रकाशित ग्रंथ "आनंदघन का रहस्यवाद" एवं आचारांग सूत्र का नीतिशास्त्रीय अध्ययन" प्रत्यूष की तरह इन विदुषी साध्वियों की प्रतिभा की पूर्व सूचना दे रहे थे। विश्व पूज्य की अमर स्मृति में साधना के ये नव दिव्य पुष्प अरुणोदय की रश्मियों की तरह हैं।

24-4-1998
4F, White House,
10, Bhagwandas Road,
New Delhi-110001

— पं. दलसुख मालवणिया

पूज्या डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी साध्वीद्वयने "अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका" एवं "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" (1 से 7 खण्ड), आदि ग्रन्थ लिखकर तैयार किए हैं, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं गौरवमयी रचनाएँ हैं। उनका यह अथक प्रयास स्तुत्य है। साध्वीद्वय का यह कार्य उपयोगी तो है ही, तदुपरान्त जिज्ञासुजनों के लिए भी उपकारक हो, वैसा है।

इसप्रकार जैनदर्शन की सरल और संक्षिप्त जानकारी अन्यत्र दुर्लभ है। जिज्ञासु पाठकों को जैनधर्म के सद् आचार-विचार, तप-संयम, विनय-विवेक विषयक आवश्यक ज्ञान प्राप्त हो जाय, वैसी कृतियाँ हैं।

पूज्या साध्वीद्वय द्वारा लिखित इन कृतियों के माध्यम से मानव-समाज को जैनधर्म-दर्शन सम्बन्धी एक दिशा, एक नई चेतना प्राप्त होगी।

ऐसे उत्तम कार्य के लिए साध्वीद्वय का जितना उपकार माना जाय, वह स्वल्प ही होगा।

दिनांक : 30-4-98

माधुरी-8,
आपेरा सोसायटी, पालड़ी,
अहमदाबाद-380007

11

सूक्ति-सुधारस: मेरी दृष्टि में

— *डॉ. नेमीचन्द जैन*
संपादक "तीर्थंकर"

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' के एक से सात खण्ड तक में, मैं गोते लगा सका हूँ। आनन्दित हूँ। रस-विभोर हूँ। कवि बिहारी के दोहे की एक पंक्ति बार-बार आँखों के सामने आ-जा रही है : "बूड़े अनबूड़े, तिरे जे बूड़े सब अंग" । जो डूबे नहीं, वे डूब गये हैं और जो डूब सके हैं सिर-से-पैर तक वे तिर गये हैं। अध्यात्म, विशेषतः श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी के 'अभिधान राजेन्द्र कोष' का यही आलम है। डूबिये, तिर जाएँगे; सतह पर रहिये, डूब जाएँगे ।

वस्तुतः 'अभिधान राजेन्द्र कोष' का एक-एक वर्ण बहुमुखीता का धनी है। यह अप्रतिम कृति 'विश्वपूज्य' का 'विश्वकोश' (एन्सायक्लोपीडिया) है। जैसे-जैसे हम इसके तलातल का आलोड़न करते हैं, वैसे-वैसे जीवन की दिव्य छबियाँ थिरकती-ठुमकती हमारे सामने आ खड़ी होती हैं। हमारा जीवन सर्वोत्तम से संवाद बनने लगता है ।

'अभिधान राजेन्द्र' में संयोगतः सम्मिलित सूक्तियाँ ऐसी सूक्तियाँ हैं, जिनमें श्रीमद् की मनीषा-स्वाति ने दुर्लभ/दीप्तिमन्त मुक्ताओं को जन्म दिया है। ये सूक्तियाँ लोक-जीवन को माँजने और उसे स्वच्छ-स्वस्थ दिशा-दृष्टि देने में अद्वितीय हैं। मुझे विश्वास है कि साध्वीद्वय का यह प्रथम पुरुषार्थ उन तमाम सूक्तियों को, जो 'अभिधान राजेन्द्र' में प्रसंगतः समाविष्ट हैं, प्रस्तुत करने में सफल होगा। मेरे विनम्र मत में यदि इनमें-से कुछेक सूक्तियों का मन्दिरों, देवालयों, स्वाध्याय-कक्षों, स्कूल-कॉलेजों की भित्तियों पर अंकन होता है तो इससे हमारी धार्मिक असंगतियों को तो एक निर्मल कायाकल्प मिलेगा ही, राष्ट्रीय चरित्र को भी नैतिक उठान मिलेगा। मैं न सिर्फ २६६७ सूक्तियों के ७ बृहत् खण्डों की प्रतीक्षा करूँगा, अपितु चाहूँगा कि इन सप्त सिन्धुओं के सावधान परिमन्थन से कोई 'राजेन्द्र सूक्ति नवनीत' जैसी लघुपुस्तिका सूरज की पहली किरण देखे। ताकि संतप्त मानवता के घावों पर चन्दन-लेप संभव हो ।

27-04-1998
65, पत्रकार कालोनी, कनाड़िया मार्ग,
इन्दौर (म.प्र.)-452001

— *डॉ. सागरमल जैन*
पूर्व निर्देशक पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) नामक इस कृति का प्रणयन पूज्या साध्वीश्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी ने किया है। वस्तुतः यह कृति अभिधानराजेन्द्रकोष में आई हुई महत्त्वपूर्ण सूक्तियों का अनूठा आलेखन हैं। लगभग एक शताब्दि पूर्व ईस्वीसन् १८९० आश्विन शुक्ला दूज के दिन शुभ लग्न में इस कोष ग्रन्थ का प्रणयन प्रारम्भ हुआ और पूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के अथक प्रयासों से लगभग १४ वर्ष में यह पूर्ण हुआ फिर इसके प्रकाशन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जो पुनः १७ वर्षो में पूर्ण हुई। जैनधर्म सम्बन्धी विश्वकोषों में यह कोष ग्रन्थ आज भी सर्वोपरि स्थान रखता है। प्रस्तुत कोष में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति और साहित्य से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण शब्दों का अकारादि क्रम से विस्तारपूर्वक विवेचन उपलब्ध होता है। इस विवेचना में लगभग शताधिक ग्रन्थों से सन्दर्भ चुने गये हैं। प्रस्तुत कृति में साध्वी-द्वय ने इसी कोषग्रन्थ को आधार बनाकर सूक्तियों का आलेखन किया हैं। उन्होंने अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रत्येक खण्ड को आधार मानकर इस 'सूक्ति-सुधारस' को भी सात खण्डों में ही विभाजित किया हैं। इसके प्रथम खण्ड में अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रथम भाग में सूक्तियों का आलेखन किया है। यही क्रम आगे के खण्डों में भी अपनाया गया हैं। 'सूक्ति-सुधारस' के प्रत्येक खण्ड का आधार अभिधान राजेन्द्र कोष का प्रत्येक भाग ही रहा हैं। अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रत्येक भाग को आधार बनाकर सूक्तियों का संकलन करने के कारण सूक्तियों को न तो अकारादिक्रम से प्रस्तुत किया गया है और न उन्हें विषय के आधार पर ही वर्गीकृत किया गया हैं, किन्तु पाठकों की सुविधा के लिए परिशिष्ट में अकारादिक्रम से एवं विषयानुक्रम से शब्द-सूचियाँ दे दी गई हैं, इससे जो पाठक अकारादि क्रम से अथवा विषयानुक्रम से इन्हें जानना चाहे उन्हें भी सुविधा हो सकेगी। इन परिशिष्टों के माध्यम से प्रस्तुत कृति अकारादिक्रम अथवा विषयानुक्रम की कमी की पूर्ति कर देती है। प्रस्तुतकृति में प्रत्येक

सूक्ति के अन्त में अभिधान राजेन्द्र कोष के सन्दर्भ के साथ-साथ उस मूल ग्रन्थ का भी सन्दर्भ दे दिया गया है, जिससे ये सूक्तियाँ अभिधान राजेन्द्र कोष में अवतरित की गई। मूलग्रन्थों के सन्दर्भ होने से यह कृति शोध-छात्रों के लिए भी उपयोगी बन गई हैं।

वस्तुतः सूक्तियाँ अतिसंक्षेप में हमारे आध्यात्मिक एवं सामाजिक जीवन मूल्योंको उजागर कर व्यक्ति को सम्यक्जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं। अतः ये सूक्तियाँ जन साधारण और विद्वत् वर्ग सभी के लिए उपयोगी हैं। आबाल-वृद्ध उनसे लाभ उठा सकते हैं। साध्वीद्वय ने परिश्रमपूर्वक जो इन सूक्तियों का संकलन किया है वह अभिधान राजेन्द्र कोष रूपी महासागर से रत्नों के चयन के जैसा हैं। प्रस्तुत कृति में प्रत्येक सूक्ति के अन्त में उसका हिन्दी भाषा में अर्थ भी दे दिया गया है, जिसके कारण प्राकृत और संस्कृत से अनभिज्ञ सामान्य व्यक्ति भी इस कृति का लाभ उठा सकता हैं। इन सूक्तियों के आलेखन में लेखिका-द्वय ने न केवल जैनग्रन्थों में उपलब्ध सूक्तियों का संकलन/संयोजन किया है, अपितु वेद, उपनिषद, गीता, महाभारत, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि की भी अभिधान राजेन्द्र कोष में गृहीत सूक्तियों का संकलन कर अपनी उदारहृदयता का परिचय दिया है। निश्चय ही इस महनीय श्रम के लिए साध्वी-द्वय-पूज्या डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी साधुवाद की पात्रा हैं। अन्त में मैं यही आशा करता हूँ कि जन सामान्य इस 'सूक्ति-सुधारस' में अवगाहन कर इसमें उपलब्ध सुधारस का आस्वादन करता हुआ अपने जीवन को सफल करेगा और इसी रूप में साध्वी द्वय का यह श्रम भी सफल होगा।

दिनांक 31-6-1998
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान
वाराणसी (उ.प्र.)

13

मन्तव्य

विद्याव्रती
शास्त्र सिद्धान्त रहस्य विद् ?
— पं. गोविन्दराम व्यास

उक्तियाँ और सूक्त-सूक्तियाँ वाङ्मय वारिधि की विवेक वीचियाँ हैं। विद्या संस्कार विमर्शिता विगत की विवेचनाएँ हैं । विवर्द्धित-वाङ्मय की वैभवी विचारणाएँ हैं । सार्वभौम सत्य की स्तुतियाँ हैं । प्रत्येक पल की परमार्शदायिनी-पारदर्शिनी प्रज्ञा पारमिताएँ हैं । समाज, संस्कृति और साहित्य की सरसता की छवियाँ हैं । क्रान्तदर्शी कोविदों की पारदर्शिनी परिभाषाएँ हैं। मनीषियों की मनीषा की महत्त्व प्रतिपादिनी पीपासाएँ हैं । क्रूर-काल के कौतुकों में भी आयुष्मती होकर अनागत का अवबोध देती रही हैं । ऐसी सूक्तियों को सश्रद्ध नमन करता हुआ वागृदेवता का विद्या-प्रिय विप्र होकर वाङ्मयी पूजा में प्रयोगवान् बन रहा हूँ ।

श्रमण-संस्कृति की स्वाध्याय में स्वात्म-निष्ठा निराली रही है । आचार्य हरिभद्र, अभय, मलय जैसे मूर्धन्य महामतिमान्, सिद्धसेन जैसे शिरोमणि, सक्षम, श्रद्धालु जिनभद्र जैसे - क्षमाश्रमणों का जीवन वाङ्मयी वरिवस्या का विशेष अंग रहा है ।

स्वाध्याय का शोभनीय आचार अद्यावधि-हमारे यहाँ अक्षुण्ण पाया जाता है । इसीलिए स्वाध्याय एवं प्रवचन में अप्रमत्त रहने का समादश शास्त्रकारों ने स्वीकार किया है ।

वस्तुतः नैतिक मूल्यों के जागरण के लिए, आध्यात्मिक चेतना के ऊर्ध्वीकरण के लिए एवं शाश्वत मूल्यों के प्रतिष्ठापन के लिए आर्याप्रवरा द्वय द्वारा रचित प्रस्तुत ग्रन्थ 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका' एक उपादेय महत्त्वपूर्ण गौरवमयी रचना है ।

आत्म-अभ्युदयशीला, स्वाध्याय-परायणा, सतत अनुशीलन उज्ज्वला आर्या डॉ. श्री प्रियदर्शनाजी एवं डॉ. श्री सुदर्शनाजी की शास्त्रीय-साधना सराहनीया है । इन्होंने अपने आम्नाय के आद्य-पुरुष की प्रतिभा का परिचय प्राप्त करने का प्रयास कर अपनी चारित्र-सम्पदा को वाङ्मयी साधना में

समर्पिता करती हुई 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ') का रहस्योद्घाटन किया है ।

विदुषी श्रमणी द्वय ने प्रस्तुत कृति 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) को कोषों के कारागारों से मुक्तकर जीवन की वाणी में विशद करने का विश्वास उपजाया है । अतः आर्या युगल, इसप्रकार की वाङ्मयी-भारती भक्ति में भूषिता रहें एवं आत्मतोष में तोषिता होकर सारस्वत इतिहास की असामान्या विदुषी बनकर वाङ्मय के प्रांगण की प्रोन्नता भूमिका निभाती रहें । यही मेरा आत्मीय अमोघ आशीर्वाद है ।

इनका विद्या-विवेकयोग, श्रुतों की समाराधना में अच्युत रहे, अपनी निरहंकारिता को अतीव निर्मला बनाता रहे और उत्तरोत्तर समुत्साह-समुन्नत होकर स्वान्तः सुख को समुल्लसित रचता रहे । यही सदाशया शोभना शुभाकांक्षा है ।

चैत्रसुदी 5 बुध
1 अप्रैल, 98
हरजी
जिला - जालोर (राज.)

— पं. जयनंदन झा,
व्याकरण साहित्याचार्य,
साहित्य रत्न एवं शिक्षाशास्त्री

मनुष्य विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि है। वह अपने उदात्त मानवीय गुणों के कारण सारे जीवों में उत्तरोत्तर चिन्तनशील होता हुआ विकास की प्रक्रिया में अनवरत प्रवर्धमान रहा है। उसने पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति ही जीवन का परम ध्येय माना है, पर ज्ञानीजन ने इस संसार को ही परम ध्येय न मानकर अध्यात्म ज्ञान को ही सर्वोपरि स्थान दिया है। अतः जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति में धर्म, अर्थ और काम को केवल साधन मात्र माना है।

इसलिये अध्यात्म चिन्तन में भारत विश्वमंच पर अति श्रद्धा के साथ प्रशंसित रहा है। इसकी धर्म सहिष्णुता अनोखी एवं मानवमात्र के लिये अनुकरणीय रही है। यहाँ वैष्णव, जैन तथा बौद्ध धर्माचार्यों ने मिलकर धर्म की तीन पवित्र नदियों का संगम "त्रिवेणी" पवित्र तीर्थ स्थापित किया है जहाँ सारे धर्माचार्य अपने-अपने चिन्तन से सामान्य मानव को भी मिल-बैठकर धर्मचर्चा के लिये विवश कर देते हैं। इस क्षेत्र में किस धर्म का कितना योगदान रहा है, यह निर्णय करना अल्प बुद्धि साध्य नहीं है।

पर, इतना निर्विवाद है कि जैन मनीषी और सन्त अपनी-अपनी विशिष्ट विशेषताओं के लिये आत्मोत्कर्ष के क्षेत्र में तपे हुए मणि के समान सहस्र-सूर्य-किरण के कीर्तिस्तम्भ से भारतीय दर्शन को प्रोद्भासित कर रहे हैं, जो काल की सीमा से रहित है। जैनधर्म व दर्शन शाश्वत एवं चिरन्तन है, जो विविध आयामों से इसके अनेकान्तवाद को परिभाषित एवं पुष्ट कर रहे हैं। ज्ञान और तप तो इसकी अक्षय निधि है।

जैन धर्म में भी मन्दिर मार्गी-त्रिस्तुतिक परम्परा के सर्वोत्कृष्ट साधक जैनधर्माचार्य "श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. अपनी तपःसाधना और ज्ञानमीमांसा से परमपूत होने के कारण सार्वकालिक सार्वजनीन वन्द्य एवं प्रातः स्मरणीय भी हैं जिनका सम्पूर्ण जीवन सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय समर्पित रहा है। इनका सम्पूर्ण-जीवन अथाह समुद्र की भाँति है, जहाँ निरन्तर गोता लगाने

पर केवल रत्न की ही प्राप्ति होती है, पर यह अमूल्य रत्न केवल साधक को ही मिल पाता है। साधक की साधना जब उच्च कोटि की हो जाती है तब साध्य संभव हो पाता है। राजेन्द्र कोष तो इनकी अक्षय शब्द मंजूषा है, जो शब्द यहाँ नहीं है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है।

ऐसे महान् मनीषी एवं सन्त को अक्षरशः समझाने के लिये डॉ. प्रियदर्शनाश्री जी एवं डॉ. सुदर्शनाश्री जी साध्वीद्वय ने (१) अभिधान राजेन्द्र कोष में, "सूक्ति-सुधारस" (१ से ७ खण्ड) (२) अभिधान राजेन्द्र कोष में, "जैनदर्शन वाटिका" तथा (३) 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्र सूरि : जीवन-सौरभ) इन अमूल्य ग्रन्थों की रचना कर साधक की साधना को अतीव सरल बना दिया है। परम पूज्या! साध्वीद्वय ने इन ग्रन्थों की रचना में जो अपनी बुद्धिमत्ता एवं लेखन-चातुर्य का परिचय दिया है वह स्तुत्य ही नहीं; अपितु इस भौतिकवादी युग में जन-जन के लिये अध्यात्मक्षेत्र में पाथेय भी बनेगा। मैंने इन ग्रन्थों का विहंगम अवलोकन किया है। भाषा की प्रांजलता और विषयबोध की सुगमता तो पाठक को उत्तरोत्तर अध्ययन करने में रूचि पैदा करेगी, वह सहज ही सबके लिये हृदयग्राहिणी बनेगी। यही लेखिकाद्वय की लेखनी की सार्थकता बनेगी।

अन्त में यहाँ यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि "रघुवंश" महाकाव्य-रचना के प्रारंभ में कालिदास ने लिखा है कि "तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्" पर वही कालिदास कवि सम्राट् कहलाये। इसीतरह आप दोनों का यह परम लोकोपकारी अथक प्रयास भौतिकवादी मानवमात्र के लिये शाश्वत शान्ति प्रदान करने में सहायक बन पायेगा। इति। शुभम्।

25-7-98
3घ - 12 मधुबन हा. बो.
बासनी, जोधपुर

पं. हीरालाल शास्त्री
एम.ए.

विदुषी साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शना श्री एम. ए., पीएच. डी. एवं डॉ. सुदर्शनाश्री एम. ए. पीएच. डी. द्वारा रचित ग्रन्थ 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) सुभाषित सूक्तियों एवं वैदुष्यपूर्ण हृदयग्राही वाक्यों के रूप में एक पीयूष सागर के समान है ।

आज के गिरते नैतिक मूल्यों, भौतिकवादी दृष्टिकोण की अशान्ति एवं तनावभरे सांसारिक प्राणी के लिए तो यह एक रसायन है, जिसे पढ़कर आत्मिक शान्ति, दृढ इच्छा-शक्ति एवं नैतिक मूल्यों की चारित्रिक सुरभि अपने जीवन के उपवन में व्यक्ति एवं समष्टि की उदात्त भावनाएँ गहगहायमान हो सकेगी, यह अतिशयोक्ति नहीं, एक वास्तविकता है ।

आपका प्रयास स्वान्तःसुखाय लोकहिताय है । 'सूक्ति-सुधारस' जीवन में संघर्षों के प्रति साहस से अडिग रहने की प्रेरणा देता है ।

ऐसे सत्साहित्य 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की महक से व्यक्ति को जीवंत बनाकर आध्यात्मिक शिवमार्ग का पथिक बनाते हैं ।

आपका प्रयास भगीरथ प्रयास है ।

भविष्य में शुभ कामनाओं के साथ ।

निवृत्तमान संस्कृत व्याख्याता
राज. शिक्षा-सेवा
राजस्थान

महावीर जन्म कल्याणक, गुरुवार
दि. 9 अप्रैल, 1998
ज्योतिष-सेवा
राजेन्द्रनगर
जालोर (राज.)

— डॉ. अखिलेशकुमार राय

साध्वीद्वय डो. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डो. सुदर्शनाश्रीजी द्वारा रचित प्रस्तुत पुस्तक का मैंने आद्योपान्त अवलोकन किया है। इनकी रचना 'सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) में श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वर जी की अमरकृति 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के प्रत्येक भाग को आधार बनाकर कुछ प्रमुख सूक्तियों का सुंदर-सरस व सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। साध्वीद्वय का यह संकल्प है कि 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में उपलब्ध लगभग २७०० सूक्तियों का सात खण्डों में संचयन कर सर्वसाधारण के लिये सुलभ कराया जाय। इसप्रकार का अनूठा संकल्प अपने आपमें अद्वितीय कहा जा सकता है। मेरा विश्वास है कि ऐसी सूक्ति सम्पन्न रचनाओं से पाठकगण के चरित्र निर्माण की दिशा निर्धारित होगी।

अब सुहृद्जनों का यह पुनीत कर्तव्य है कि वे इसे अधिक से अधिक लोगों के पठनार्थ सुलभ करायें। मैं इस महत्त्वपूर्ण रचना के लिये साध्वीद्वय की सराहना करता हूँ; इन्हें साधुवाद देता हूँ और यह शुभकामना प्रकट करता हूँ कि ये इसप्रकार की और भी अनेक रचनायें समाज को उपलब्ध करायें।

दिनांक 9 अप्रैल, 1998
चैत्र शुक्ला त्रयोदशी
1/1 प्रोफेसर कालोनी,
महाराजा कोलेज,
छतरपुर (म.प्र.)

— *डॉ. अमृतलाल गाँधी*
सेवानिवृत्त प्राध्यापक,

सम्यग्ज्ञान की आराधना में समर्पिता विदुषी साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. सुदर्शना श्रीजी म. ने 'सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) की 2667 सूक्तियों में अभिधान राजेन्द्र कोष के मन्थन का मक्खन सरल हिन्दी भाषा में प्रस्तुत कर जनसाधारण की सेवार्थ यह ग्रन्थ लिखकर जैन साहित्य के विपुल ज्ञान भण्डार में सराहनीय अभिवृद्धि की है। साध्वीद्वय ने कोष के सात भागों की सूक्तियों / सुकथनों की अलग-अलग सात खण्डों में व्याख्या करने का सफल सुप्रयास किया है, जिसकी मैं सराहना एवं अनुमोदना करते हुए स्वयं को भी इस पवित्र ज्ञानगंगा की पवित्र धारा में आंशिक सहभागी बनाकर सौभाग्यशाली मानता हूँ।

वस्तुतः अभिधान राजेन्द्र कोष पयोनिधि है। पूज्या विदुषी साध्वीद्वयने सूक्ति-सुधारस रचकर एक ओर कोष की विश्वविख्यात महिमा को उजागर किया है और दूसरी ओर अपने शुभ श्रम, मौलिक अनुसंधान दृष्टि, अभिनव कल्पना और हंस की तरह मुक्ताचयन की विवेकशीलता का परिचय दिया है।

मैं उनको इस महान् कृति के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ।

जयनारायण व्यास विश्व विद्यालय,
जोधपुर

दिनांक : 16 अप्रैल, 1998

738, नेहरूपार्क रोड,
जोधपुर (राजस्थान)

— भागचन्द जैन कवाड
प्राध्यापक (अंग्रेजी)

प्रस्तुत ग्रंथ "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" (1 से 7 खण्ड) 5 परिशिष्टों में विभक्त 2667 सूक्तियों से युक्त एक बहुमूल्य एवं अमृत कणों से परिपूर्ण ग्रन्थ है। विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ में अन्यान्य उपयोगी जीवन दर्शन से सम्बन्धित विषयों का समावेश किया गया है। उदाहरण स्वरूप जीवनोपयोगी, नैतिकता तथा आध्यात्मिक जगत् को स्पर्श करने वाले विषय यथा – 'धर्म में शीघ्रता', 'आत्मवत् चाहो', 'समाधि', 'किञ्चिद् श्रेयस्कर', 'अकथा', 'क्रोध परिणाम', 'अपशब्द', सच्चा भिक्षु, धीर साधक, पुण्य कर्म, अजीर्ण, बुद्धियुक्त वाणी, बलप्रद जल, सच्चा आराधक, ज्ञान और कर्म, पूर्ण आत्मस्थ, दुर्लभ मानव-भव, मित्र-शत्रु कौन ?, कर्त्ता-भोक्ता आत्मा, रत्नपारखी, अनुशासन, कर्म विपाक, कल्याण कामना, तेजस्वी वचन, सत्योपदेश, धर्मपात्रता, स्याद्वाद आदि।

सर्वत्र ग्रन्थ में अमृत-कणों का कलश छलक रहा है तथा उनकी सुवास व्याप्त है जो पाठक को भाव विभोर कर देती है, वह कुछ क्षणों के लिए अतिशय आत्मिक सुख में लीन हो जाता है। विदुषी महासतियाँ द्वय डॉ. प्रियदर्शना श्री जी एवं डॉ. सुदर्शना श्री जी ने अपनी प्रखर लेखनी के द्वारा गूढ़तम विषयों को सरलतम रूप से प्रस्तुत कर पाठकों को सहज भाव से सुधा का पान कराया है। धन्य है उनकी अथक साधना लगन व परिश्रम का सुफल जो इस धरती पर सर्वत्र आलोक किरणें बिखेरेगा और धन्य एवं पुलकित हो उठेंगे हम सब।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी
दिनांक 9 अप्रैल 1998
विजय निवास,
कचहरी रोड़,
किशनगढ़ शहर (राज.)

अग्रवाल गर्ल्स कोलेज
मदनगंज (राज.)

दर्पण

19

दर्पण

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' ग्रन्थ का प्रकाशन 7 खण्डों में हुआ है। प्रथम खण्ड में 'अ' से 'ह' तक के शीर्षकों के अन्तर्गत सूक्तियाँ संजोयी गई हैं। अन्त में अकारादि अनुक्रमणिका दी गई हैं। प्रायः यही क्रम 'सूक्ति सुधारस' के सातों खण्डों में मिलेगा। शीर्षकों का अकारादि क्रम है। शीर्षक सूची विषयानुक्रम आदि हर खण्ड के अन्त में परिशिष्ट में दी गई है। पाठक के लिए परिशिष्ट में उपयोगी सामग्री संजोयी गई है। प्रत्येक खण्ड में 5 परिशिष्ट हैं। प्रथम परिशिष्ट में अकारादि अनुक्रमणिका, द्वितीय परिशिष्ट में विषयानुक्रमणिका, तृतीय परिशिष्ट में अभिधान राजेन्द्र : पृष्ठ संख्या, अनुक्रमणिका, चतुर्थ परिशिष्ट में जैन एवं जैनेतर ग्रन्थः गाथा/श्लोकादि अनुक्रमणिका और पञ्चम परिशिष्ट में 'सूक्ति-सुधारस' में प्रयुक्त सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची दी गई है। हर खण्ड में यही क्रम मिलेगा। 'सूक्ति-सुधारस' के प्रत्येक खण्ड में सूक्ति का क्रम इसप्रकार रखा गया है कि सर्व प्रथम सूक्ति का शीर्षक एवं मूल सूक्ति दी गई है। फिर वह सूक्ति अभिधान राजेन्द्र कोष के किस भाग के किस पृष्ठ से उद्धृत है। सूक्ति-आधार ग्रन्थ कौन-सा है ? उसका नाम और वह कहाँ आयी है, वह दिया है। अन्त में सूक्ति का हिन्दी भाषा में सरलार्थ दिया गया है।

सूक्ति-सुधारस के प्रथम खण्ड में 251 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के द्वितीय खण्ड में 259 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के तृतीय खण्ड में 289 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के चतुर्थ खण्ड में 467 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के पंचम खण्ड में 471 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के षष्टम खण्ड में 607 सूक्तियाँ हैं।
सूक्ति-सुधारस के सप्तम खण्ड में 323 सूक्तियाँ हैं।

कुल मिलाकर 'सूक्ति सुधारस' के सप्त खण्डों में 2667 सूक्तियाँ हैं। इस ग्रन्थ में न केवल जैनागमों व जैन ग्रन्थों की सूक्तियाँ हैं, अपितु वेद,

उपनिषद, गीता, महाभारत, आयुर्वेद शास्त्र, ज्योतिष, नीतिशास्त्र, पुराण, स्मृति, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों की भी सूक्तियाँ हैं ।

1. विश्वपूज्य प्रणीत सम्पूर्ण वाङ्मय
2. लेखिका द्वय की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

'विश्वपूज्यः'
जीवन-दर्शन

20

महिमामण्डित बहुरत्नावसुन्धरा से समलंकृत परम पावन भारतभूमि की वीर प्रसविनी राजस्थान की ब्रजधरा भरतपुर में सन् 1827 - 3 दिसम्बर को पौष शुक्ला सप्तमी, गुरुवार के शुभ दिन एक दिव्य नक्षत्र संतशिरोमणि विश्वपूज्य आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी ने जन्म लिया, जिन्होंने अस्सी वर्ष की आयु तक लोकमाङ्गल्य की गंगधारा समस्त जगत् में प्रवाहित की ।

उनका जीवन भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने के लिए समर्पित हुआ ।

वह युग अँग्रेजी राज्य की धूमिल घन घटाओं से आच्छादित था। पाश्चात्त्य संस्कृति की चकाचौंध ने भारत की सरल आत्मा को कुण्ठित कर दिया था। नव पीढ़ी ईसाई मिशनरियों के धर्मप्रचार से प्रभावित हो गई थी। अँग्रेजी शासन में पद-लिप्सा के कारण शिक्षित युवापीढ़ी अतिशय आकर्षित थी ।

ऐसे अन्धकारमय युग में भारतीय संस्कृति की गरिमा को अक्षुण्ण रखने के लिए जहाँ एक ओर राजा राममोहनराय ने ब्रह्मसमाज की स्थापना की, तो दूसरी ओर दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म का शंखनाद किया। उसी युग में पुनर्जागरण के लिए प्रार्थना समाज और एनी बेसेन्ट ने थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना की । 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को अँग्रेजी शासन की तोपों ने कुचल दिया था। भारतीय जनता को निराशा और उदासीनता ने घेर लिया था।

जागृति का शंखनाद फूँकने के लिए लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने यह उद्घोषणा की — 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।' महामना मदनमोहन मालवीय ने बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय की स्थापना की ।

श्री मोहनदास कर्मचन्द गान्धी (राष्ट्रपिता - महात्मा गाँधी) को महान् संत श्रीमद् राजचन्द्र की स्वीकृति से उनके पिताश्री कर्मचन्दजी ने इंग्लैंड में बार-एट-लॉ उपाधि हेतु भेजा। गाँधीजी ने महान् संत श्रीमद् राजचन्द्र की तीन प्रतिज्ञाएँ पालन कर भारत की गौरवशालिनी संस्कृति को उजागर किया। ये तीन प्रतिज्ञाएँ थीं — 1. मांसाहार त्याग 2. मदिरापान त्याग और 3. ब्रह्मचर्य का पालन। ये प्रतिज्ञाएँ भारतीय संस्कृति की रवि-रश्मियाँ हैं, जिनके प्रकाश से भारत जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हैं, परन्तु आँग्ल शासन ने हमारी उज्ज्वल संस्कृति को नष्ट करने का भरसक प्रयास किया।

ऐसे समय में अनेक दिव्य एवं तेजस्वी महापुरुषों ने जन्म लिया जिनमें श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, श्री आत्मारामजी (सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्द सूरिजी) एवं विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी म. आदि हैं।

श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी ने चरित्र निर्माण और संस्कृति की पुनर्स्थापना के लिए जो कार्य किया, वह स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है। एक ओर उन्होंने भारतीय साहित्य के गौरवशाली, चिन्तामणि रत्न के समान 'अभिधान राजेन्द्र कोष' को सात खण्डों में रचकर भारतीय वाङ्मय को विश्व में गौरवान्वित किया, तो दूसरी ओर उन्होंने सरल, तपोनिष्ठ, त्याग, करुणार्द्र और कोमल जीवन से सबको मैत्री-सूत्र में गुम्फित किया।

विश्वपूज्य की उपाधि उनको जनता जनार्दन ने, उनके प्रति अगाध श्रद्धा-प्रीति और भक्ति से प्रदान की है, यद्यपि ये निर्मोही अनासक्त योगी थे। न तो किसी उपाधि-पदवी के आकाङ्क्षी थे और न अपनी यशोपताका फहराने के लिए लालायित थे।

उनका जीवन अनन्त ज्योतिर्मय एवं करुणा रस का सुधा-सिन्धु था!

उन्होंने अपने जीवनकाल में महनीय 61 ग्रन्थों की रचना की है जिनमें काव्य, भक्ति और संस्कृति की रसवंती धाराएँ प्रवाहित हैं।

वस्तुत: उनका मूल्यांकन करना हमारे वश की बात नहीं, फिरभी हम प्रीतिवश यह लिखती हैं कि जिस समय भारत के मनीषी-साहित्यकार एवं कवि भारतीय संस्कृति और साहित्य को पुनर्जीवित करना चाहते थे, उस समय विश्वपूज्य भी भारत के गौरव को उद्भासित करने के लिए 63 वर्ष की आयु में सन् 1890 आश्विन शुक्ला 2 को कोष के प्रणयन में जुट गए। इस कोष के सप्त खण्डों को उन्होंने सन् 1903 चैत्र शुक्ला 13 को परिसम्पन्न किया। यह शुभ दिन भगवान् महावीर का जन्म कल्याणक दिवस है। शुभारम्भ नवरात्रि में किया और समापन प्रभु के जन्म-कल्याणक के दिन वसन्त ऋतु की मनमोहक सुगन्ध बिखेरते हुए किया।

यह उल्लेख करना समीचीन है कि उस युग में मैकाले ने अँग्रेजी भाषा और साहित्य को भारतीय विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अनिवार्य कर दिया था और नई पीढ़ी अँग्रेजी भाषा तथा साहित्य को पढ़कर भारतीय साहित्य व संस्कृति को हेय समझने लगी थी, ऐसे पराभव युग में बालगंगाधर तिलक ने 'गीता रहस्य', जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरजी ने 'कर्मयोग', श्रीमद् आत्मारामजी ने 'जैन तत्त्वादर्श' व 'अज्ञान तिमिर भास्कर',[1] महान् मनीषी अरविन्द घोष ने 'सावित्री' महाकाव्य लिखकर पश्चिम-जगत् को अभिभूत कर दिया।

उस युग में प्रज्ञा महर्षि जैनाचार्य विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी गुरुदेव ने '**अभिधान राजेन्द्र कोष**' की रचना की। उनके द्वारा निर्मित यह अनमोल ग्रन्थराज एक अमरकृति है। यह एक ऐसा विशाल कार्य था, जो एक व्यक्ति की सीमा से परे की बात थी, किन्तु यह दायित्व विश्वपूज्य ने अपने कंधों पर ओढ़ा।

भारतीय संस्कृति और साहित्य के पुनर्जागरण के युग में विश्वपूज्य ने महान् कोष को रचकर जगत् को ऐसा अमर ग्रन्थ दिया जो चिर नवीन है। यह 'एन साइक्लोपिडिया' समस्त भाषाओं की करुणार्द्र माता

---

1 अज्ञान तिमिर भास्कर को पढकर अग्रेज विद्वान् हार्नेल इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने श्रीमद् आत्मारामजी को 'अज्ञान तिमिर भास्कर' के अलकरण से विभूषित किया तथा उन्होंने अपने ग्रन्थ 'उपासक दशाग' के भाष्य को उन्हें समर्पित किया।

संस्कृत, जनमानस में गंग-धारा के समान बहनेवाली जनभाषा अर्धमागधी और जनता-जनार्दन को प्रिय लगनेवाली प्राकृत भाषा - इन तीनों भाषाओं के शब्दों की सुस्पष्ट, सरल और सहज व्याख्या उद्भासित करता है ।

इस महाकोष का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें गीता, मनुस्मृति, ऋग्वेद, पद्मपुराण, महाभारत, उपनिषद, पातंजल योगदर्शन, चाणक्य नीति, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों की सुबोध टीकाएँ और भाष्य उपलब्ध हैं । साथ ही आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'चरक संहिता' पर भी व्याख्याएँ हैं ।

'अभिधान राजेन्द्र कोष' की प्रशंसा भारतीय एवं पाश्चात्त्य विद्वान् करते नहीं थकते । इस ग्रन्थ रत्नमाला के सात खण्ड सात अनुपम दिव्य रत्न हैं, जो अपनी प्रभा से साहित्य-जगत् को प्रदीप्त कर रहे हैं ।

इस भारतीय राजर्षि की साहित्य एवं तप-साधना पुरातन ऋषि के समान थी । वे गुफाओं एवं कन्दराओं में रहकर ध्यानालीन रहते थे । उन्होंने स्वर्णगिरि, चामुण्डावन, मांगीतुंगी आदि गुफाओं के निर्जन स्थानों में तप एवं ध्यान-साधना की । ये स्थान वन्य पशुओं से भयावह थे, परन्तु इस ब्रह्मर्षि के जीवन से जो प्रेम और मैत्री की दुग्धधारा प्रवाहित होती थी, उससे हिंस्र पशु-पक्षी भी उनके पास शांत बैठते थे और भयमुक्त हो चले जाते थे ।

ऐसे महापुरुष के चरण कमलों में राजा-महाराजा, श्रीमन्त, राजपदाधिकारी नतमस्तक होते थे । वे अत्यन्त मधुर वाणी में उन्हें उपदेश देकर गर्व के शिखर से विनय-विनम्रता की भूमि पर उतार लेते थे और वे दीन-दुखियों, दरिद्रों, असहायों, अनाथों एवं निर्बलों के लिए साक्षात् भगवान् थे ।

उन्होंने सामाजिक कुरीतियों-कुपरम्पराओं, बुराइयों को समाप्त करने के लिए तथा धार्मिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, मिथ्याधारणाओं और कुसंस्कारों को मिटाने के लिए ग्राम-ग्राम, नगर-नगर पैदल विहार कर विभिन्न प्रवचनों के माध्यम से उपदेशामृत की अजस्रधारा प्रवाहित

की। तृष्णातुर मनुष्यों को संतोषामृत पिलाया। कुसंपों के फुफकारते फणिधरों को शांत कर समाज को सुसंप का सुधा-पान कराया।

विश्वपूज्य ने नारी-गरिमा के उत्थान के लिए भी कन्या-पाठशालाएँ, दहेज उन्मूलन, वृद्ध-विवाह निषेध आदि का आजीवन प्रचार-प्रसार किया। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' के अनुरूप सन्देश दिया अपने प्रवचनों एवं साहित्य के माध्यम से।

गुरुदेव ने पर्यावरण-रक्षण के लिए वृक्षों के संरक्षण पर जोर दिया। उन्होंने पशु-पक्षी के जीवन को अमूल्य मानते हुए उनके प्रति प्रेमभाव रखने के लिए उपदेश दिए। पर्वतों की हरियाली, वन-उपवनों की शोभा, शान्ति एवं अन्तर-सुख देनेवाली है। उनका रक्षण हमारे जीवन के लिए अत्यावश्यक है। इसप्रकार उन्होंने समस्त जीवराशि के संरक्षण के लिए उपदेश दिया।

काव्य विभूषा : उनकी काव्य कला अनुपम है। उन्होंने शास्त्रीय राग-रागिनियों में अनेक सज्झाय व स्तवन गीत रचे हैं। उन्होंने शास्त्रीय रागों में ठुमरी, कल्याण, भैरवी, आशावरी आदि का अपने गीतों में सुरम्य प्रयोग किया है। लोकप्रिय रागिनियों में वनझारा, गरबा, ख्याल आदि प्रियंकर हैं। प्राचीन पूजा गीतों की लावनियों में 'सलूणा', 'रेखता', 'तीरथनी आशातना नवि करिए रे' आदि रागों का प्रयोग मनमोहक हैं। उन्होंने उर्दू की गजल का भी अपने गीतों में प्रयोग किया है।

चैत्यवंदन - स्तुतियों में - दोहा, शिखरणी, स्रग्धरा, मालिनी, पद्धडी प्रमुख हैं। पद्धडी छन्द में रचित श्री महावीर जिन चैत्यवंदन की एक वानगी प्रस्तुत है —

"संसार सागर तार धीर, तुम विण कोण मुझ हरत पीर।
मुझ चित्त चंचल तुं निवार, हर रोग सोग भयभीत वार ॥ [1]

एक निश्छल भक्त का दैन्य निवेदन मौन-मधुर है। साथ ही अपने परम तारक परमात्मा पर अखण्ड विश्वास और श्रद्धा-भक्ति को प्रकट करता है।

---

1 जिन - भक्ति - मंजूषा भाग - 1

चौपड़ क्रीड़ा- सज्झाय में अलौकिक निरंजन शुद्धात्म चेतन रूप प्रियतम के साथ विश्वपूज्य की शुद्धात्मा रूपी प्रिया किस प्रकार चौपड़ खेलती है ? वे कहते हैं –

'रंग रसीला मारा, प्रेम पनोता मारा, सुखरा सनेही मारा साहिबा ।
पिउ मोरा चोपड़ इणविध खेल हो ॥
चार चोपड़ चारों गति, पिउ मोरा चोरासी जीवा जोन हो ।
कोठा चोरासिये फिरे, पिउ मोरा सारी पासा वसेण हो ॥" [1]

यह चौपड़ का सुन्दर रूपक है और उसके द्वारा चतुर्गति रूप संसार में चौपड़ का खेल खेला जा रहा है। साधक की शुद्धात्म-प्रिया चेतन रूप प्रियतम को चौपड़ के खेल का रहस्योद्घाटन करते हुए कहती है कि चौपड़ चार पट्टी और 84 खाने की होती है। इसीतरह चतुर्गति रूप चौपड़ में भी 84 लक्षयोनि रूप 84 घर-उत्पत्ति-स्थान होते हैं। चतुर्गति चौपड़ के खेल को जीतकर आत्मा जब विजयी बन जाती है, तब वह मोक्ष रूपी घर में प्रवेश करती है।

अध्यात्मयोगी संत आनंदघन ने भी ऐसी ही चौपड़ खेली है –

"प्राणी मेरो, खेलै चतुरगति चोपर ।
नरद् गंजफा कौन गिनत है, मानै न लेखे बुद्धिवर ॥
राग दोस मोह के पासे, आप वणाए हितधर ।
जैसा दाव परै पासे का, सारि चलावै खिलकर ॥" [2]

विश्वपूज्य का काव्य अप्रयास हृदय-वीणा पर अनुगुंजित है । 'पिउ' [प्रियतम] शब्द कविता की अंगूठी में हीरककणी के समान मानो जड़ दिया।

विश्वपूज्य की आत्मरमणता उनके पदों में दृष्टिगत होती है। वे प्रकाण्ड विद्वान् – मनीषी होते हुए भी अध्यात्म योगीराज आनन्दघन की तरह अपनी मस्त फकीरी में रमते थे। उनका यह पद मनमोहक है –

'अवधू आतम ज्ञान में रहना,
किसी कु कुछ नहीं कहना ॥' [3]

---

1. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1
2. आनन्दघन ग्रन्थावली
3. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1

'मौनं सर्वार्थ साधनम्' की अभिव्यंजना इसमें मुखरित हुई है। उनके पदों में व्यक्ति की चेतना को झकझोर देने का सामर्थ्य है, क्योंकि वे उनकी सहज अनुभूति से निःसृत है। विश्वपूज्य का अंतरंग व्यक्तित्व उनकी काव्य-कृतियों में व्याप्त है। उनके पदों में कबीर-सा फक्कड़पन झलकता है। उनका यह पद द्रष्टव्य है –

"ग्रन्थ रहित निर्ग्रन्थ कहीजे, फकीर फिकर फकनारा।
ज्ञानवास में बसे संन्यासी, पंडित पाप निवारा रे
सद्गुरु ने बाण मारा, मिथ्या भरम विदारा रे ॥" [1]

विश्वपूज्य का व्यक्तित्व वैराग्य और अध्यात्म के रंग में रंगा था। उनकी आध्यात्मिकता अनुभवजन्य थी। उनकी दृष्टि में आत्मज्ञान ही महत्त्वपूर्ण था। 'परभावों में घूमनेवाला आत्मानन्द की अनुभूति नहीं कर सकता। उनका मत था कि जो पर पदार्थों में रमता है वह सच्चा साधक नहीं है। उनका एक पद द्रष्टव्य है –

'आतम ज्ञान रमणता संगी, जाने सब मत जंगी।
पर के भाव लहे घट अंतर, देखे पक्ष दुरंगी ॥
सोग संताप रोग सब नासे, अविनासी अविकारी।
तेरा मेरा कछु नहीं ताने, भंगे भवभय भारी ॥
अलख अनोपम रूप निज निश्चय, ध्यान हिये बिच धरना।
दृष्टि राग तजी निज निश्चय, अनुभव ज्ञानकुं वरना ॥" [2]

उनके पदों में प्रेम की धारा भी अबाधगति से बहती है। उन्होंने शांतिनाथ परमात्मा को प्रियतम का रूपक देकर प्रेम का रहस्योद्घाटन किया है। वे लिखते हैं –

'श्री शांतिजी पिउ मोरा, शांतिसुख सिरदार हो।
प्रेमे पाम्या प्रीतड़ी, पिउ मोरा प्रीतिनी रीति अपार हो ॥
शांति सलूणो म्हारो, प्रेम नगीनो म्हारो, स्नेह समीनो म्हारो नाहलो।
पिउ पल एक प्रीति पमाड हो, प्रीत प्रभु तुम प्रेमनी,
पीउ मोरा मुज मन में नहिं माय हो ॥" [3]

---

1. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1
2. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1
3. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1

यद्यपि उनकी दृष्टि में प्रेम का अर्थ साधारण-सी भावुक स्थिति न होकर आत्मानुभवजन्य परमात्म-प्रेम है, आत्मा-परमात्मा का विशुद्ध निरूपाधिक प्रेम है। इसप्रकार, विश्वपूज्य की कृतियों में जहाँ-जहाँ प्रेम-तत्त्व का उल्लेख हुआ है, वह नर-नारी का प्रेम न होकर आत्म-ब्रह्म-प्रेम की विशुद्धता है।

विश्वपूज्य में धर्म सद्भाव भी भरपूर था। वे निष्पक्ष, निस्पृही मानव-मानव के बीच अभेद भाव एवं प्राणि मात्र के प्रति प्रेम-पीयूष की वर्षा करते थे। उन्होंने अरिहन्त, अल्लाह-ईश्वर, रूद्र-शिव, ब्रह्मा-विष्णु को एक ही माना है। एक पद में तो उन्होंने सर्व धर्मों में प्रचलित परमात्मा के विविध नामों का एक साथ प्रयोग कर समन्वय-दृष्टि का अच्छा परिचय दिया है। उनकी सर्व धर्मों के प्रति समादरता का निम्नांकित पद मननीय है –

'ब्रह्म एक छे लक्षण लक्षित, द्रव्य अनंत निहारा।
सर्व उपाधि से वर्जित शिव ही, विष्णु ज्ञान विस्तारा रे ॥
ईश्वर सकल उपाधि निवारी, सिद्ध अचल अविकारा।
शिव शक्ति जिनवाणी संभारी, रूद्र है करम संहारा रे ॥
अल्लाह आतम आपहि देखो, राम आतम रमनारा।
कर्मजीत जिनराज प्रकासे, नयथी सकल विचारा रे ॥' [1]

विश्वपूज्य के इस पद की तुलना संत आनंदघन के पद से की जा सकती है। [2]

यह सच है कि जिसे परमतत्त्व की अनुभूति हो जाती है, वह संकीर्णता के दायरे में आबद्ध नहीं रह सकता। उसके लिए राम-कृष्ण, शंकर-गिरीश, भूतेश्वर, गोविन्द, विष्णु, ऋषभदेव और महादेव

---

1 जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1 पृ. 72

2 'राम कहौ रहिमान कहौ, कोउ कान्ह कहौ महादेव री।
पारसनाथ कहौ कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेवरी ॥
भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसे खण्ड कलपना रोपित, आप अखण्ड सरूप री ॥
निज पद रमै राम सो कहिये, रहम करे रहमान री।
करषै करम कान्ह सो कहियै, महादेव निरवाण री ॥
परसै रूप सो पारस कहियै, ब्रह्म चिन्है सो ब्रह्म री।
इहविध साध्यो आप आनन्दघन, चेतनमय निःकर्मरी ॥' आनंदघन ग्रन्थावली, पद ६५

या ब्रह्म आदि में कोई अन्तर नहीं रह जाता है। उसका तो अपना एक धर्म होता है और वह है – आत्म-धर्म (शुद्धात्म-धर्म)। यही बात विश्वपूज्य पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है। सामान्यतया जैन परम्परा में परम तत्त्व की उपासना तीर्थंकरों के रूप में की जाती रही है; किन्तु विश्वपूज्य ने परमतत्त्व की उपासना तीर्थंकरों की स्तुति के अतिरिक्त शंकर, शंभु, भूतेश्वर, महादेव, जगकर्ता, स्वयंभू, पुरूषोत्तम, अच्युत, अचल, ब्रह्म-विष्णु-गिरीश इत्यादि के रूप में भी की है। उन्होंने निर्भीक रूप से उद्घोषणा की है –

"शंकर शंभु भूतेश्वरो ललना, मही माहें हो वली किस्यो महादेव,
जिनवर ए जयो ललना।
जगकर्ता जिनेश्वरो ललना, स्वयंभू हो सहु सुर करे सेव,
जिनवर ए जयो ललना॥
वेद ध्वनि वनवासी ललना, चौमुखे हो चारे वेद सुचंग, जिन.।
वाणी अनक्षरी दिलवसी ललना, ब्रह्माण्डे बीजो ब्रह्म विभंग, जि.॥
पुरूषोत्तम परमातमा ललना, गोविन्द हो गिरूवो गुणवंत, जि.।
अच्युत अचल छे ओपमा ललना, विष्णु हो कुण अवर कहंत, जि.॥
नाभेय रिषभ जिणंदजी ललना, निश्चय थी हो देख्यो देव दमीश।
एहिज सूरिशजेन्द्र जी ललना, तेहिज हो ब्रह्मा विष्णु गिरीश, जि.॥"[1]

वास्तव में, विश्वपूज्य ने परमात्मा के लोक प्रसिद्ध नामों का निर्देश कर समन्वय-दृष्टि से परमात्म-स्वरूप को प्रकट किया है।

इसप्रकार कहा जा सकता है कि विश्वपूज्य ने धर्मान्धता, संकीर्णता, असहिष्णुता एवं कूपमण्डूकता से मानव-समाज को ऊपर उठाकर एकता का अमृतपान कराया। इससे उनके समय की राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थिति का भी परिचय मिलता है।

'अभिधान राजेन्द्र कोष' कथाओं का सुधासिन्धु है। कथाओं में जीवन को सुसंस्कृत, सभ्य एवं मानवीय गुण-सम्पदा से विभूषित करने का सरस शैली में अभिलेखन हुआ है। कथाएँ इक्षुरस के समान मधुर, सरस और सहज शैली में आलेखित हैं। शैली में प्रवाह हैं, प्राकृत और संस्कृत शब्दों को हीरक कणियों के समान तराश कर

---
1 जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1 पृ. 72

कथाओं को सुगम बना दिया है ।

उपसंहार :

विश्वपूज्य अजर-अमर है । उनका जीवन 'तप्तं तप्तं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्त वर्णम्' की उक्ति पर खरा उतरता है । जीवन में तप की कंचनता है, कवि-सी कोमलता है । विद्वत्ता के हिमाचल में से करुणा की गंग-धारा प्रवाहित है ।

उन्होंने जगत् को 'अभिधान राजेन्द्र कोष' रूपी कल्पतरू देकर इस धरती को स्वर्ग बना दिया है, क्योंकि इस कोष में ज्ञान-भक्ति और कर्मयोग का त्रिवेणी संगम हुआ है। यह लोक माङ्गल्य से भरपूर क्षीर-सागर है। उनके द्वारा निर्मित यह कोष आज भी आकाशी ध्रुवतारे की भाँति टिमटिमा रहा है और हमें सतत दिशा-निर्देश दे रहा है ।

विश्वपूज्य के लिए अनेक अलंकार ढूँढ़ने पर भी हमें केवल एक ही अलंकार मिलता है – वह है – अनन्वय अलंकार – अर्थात् विश्वपूज्य विश्वपूज्य ही है ।

उनका स्वर्गवास 21 दिसम्बर सन् 1906 में हुआ, परन्तु कौन कहता है कि विश्वपूज्य विलीन हो गये ? वे जन-जन के श्रद्धा केन्द्र सबके हृदय-मंदिर में विद्यमान हैं !

अभिधान राजेन्द्र कोष में,

सूक्ति-सुधारस

(तृतीय खण्ड)

1. कृतकर्म

सव्वे सय कम्म कप्पिया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 2]

— *सूत्रकृतांग 1/2/3/18*

सभी प्राणी अपने कृत कर्मों के कारण नाना योनियों में भ्रमण करते हैं ।

2. अकेला !

एगस्स गती य आगती ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 2]

— *सूत्रकृतांग 1/2/3/17*

आत्मा (परिवार आदि को छोड़कर) परलोक में अकेला ही गमनागमन करता है ।

3. आत्मा ही दुःख भोक्ता

एगो सयं पच्चणुहोति दुक्खम् ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 2]

— *सूत्रकृतांग 1/5/2/22*

आत्मा अकेला स्वयं अपने किए हुए दुःखों को भोगता है ।

4. मैं सदा अकेला

एकः प्रकुरूते कर्म, भुंक्ते एकश्च तत्फलं ।
जायत्येको म्रियत्येको, एको याति भवान्तरम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 2]
एवं [भाग 7 पृ. 493]

— *आचारांगवृत्ति (शीलांक) पृ. 190*

आत्मा अकेला कर्म करता है, अकेला ही उसका फल भोगता है, अकेला उत्पन्न होता है, अकेला ही मरता है और अकेला ही भवान्तर में जाता है ।

5. भयाकुल-मानव

हिंडंति भयाउला सढा, जाति जरा मरणेहऽभिद्दुता ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 2]

– ***सूत्रकृतांग 1/2/3/18***

भय से व्याकुल शठजन-दुष्टजन, जन्म-जरा और मृत्यु से पीड़ित होकर संसार चक्र में भ्रमण करते हैं ।

6. अव्यक्त दुःख

अव्वत्तेण दुहेण पाणिणो ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 2]

– ***सूत्रकृतांग 1/2/3/18***

सभी प्राणी अव्यक्त (अलक्षित) दुःख से दुःखी हैं ।

7. धर्म से अनभिज्ञ

अण्णाणपमाद दोसेणं, सततं मूढे धम्मं णाभिजाणति ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 8]

– ***आचारांग 1/5/1/151***

अज्ञान और प्रमाद के दोष से सतत मूढ़ बना हुआ जीव धर्म को नहीं जान पाता ।

8. अपरिपक्व मानव

वयसा वि एगे बुइता कुप्पति माणवा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 8]

– ***आचारांग 1/5/4/162***

कुछ अपरिपक्व मनुष्य थोड़े से प्रतिकूल वचन से भी कुपित हो जाते हैं ।

9. अभिमानी-मोहमूढ़

उण्णतमाणे य णरे महतामोहेण मुज्झति ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 8]

— *आचारांग 1/5/4/162*

जिस व्यक्ति का मिथ्याभिमान बढ़ा हुआ है, वह महामोह के कारण विवेक खो देता है ।

10. अपरिपक्व

संबाहा बहवे भुज्जो भुज्जो दुरतिक्कमा अनाणतो अपासतो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 8]

— *आचारांग 1/5/4/162*

अज्ञानी और अपरिपक्व मनुष्य बार-बार आनेवाली बहुत सारी बाधाओं का पार नहीं पा सकता है ।

11. नम्रता

जे एगं णामे से बहुं णामे, जे बहुं णामे से एगं णामे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 11]
एवं [भाग 7 पृ. 813]

— *आचारांग 1/3/4*

जो एक अपने को झुकाता है — जीत लेता है, वह बहुतों को झुकाता है और जो बहुतों को झुकाता है, वह एक को भी झुकाता है ।

12. एकत्वभावना

एगत्तमेव अभिपत्थएज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 13]

— *सूत्रकृतांग 1/10/12*

आत्मार्थी पुरुष एकत्व भावना की ही प्रार्थना करें !

13. श्रमण-आहार-विधि

मियं कालेण भक्खए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 69]

— *उत्तराध्ययन 1/32*

समयानुकूल परिमित भोजन करें ।

14. सुखान्त-चिन्तन

न मे चिरं दुक्खमिणं भविस्सई,
असासया भोग-पिवास जंतुणो ।
न चे सरीरेण इमेणऽवेस्सई,
अवेस्सई जीविय पज्जवेण मे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 136]
— ***दशवैकालिक चूलिका 1/11/16***

साधक यह चिंतन करे कि 'मेरा यह दु:ख चिरकाल तक नहीं रहेगा', क्योंकि जीवों की भोग-पिपासा अशाश्वत है । यदि वह इस शरीर के रहते हुए भी न मिटी, तब भी कोई बात नहीं ! मेरे जीवन के अन्त में (मृत्यु के समय) तो वह अवश्य ही मिट जाएगी !'

15. बार बार दुर्लभ

बोही य से नो सुलभा पुणो पुणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 136]
— ***दशवैकालिक चूलिका 1/11/14***

सद्बोधि प्राप्त करने का अवसर बार बार मिलना सुलभ नहीं है ।

16. व्रतभ्रष्ट — अधोगति

संभन्नवित्तस्स य हेट्ठओ गई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 136]
— ***दशवैकालिक चूलिका 1/11/13***

व्रत से भ्रष्ट होनेवाले की अधोगति होती है ।

17. निर्ग्रन्थ-प्ररूपित

तमेव सच्चं नीसंकं, जं जिणेहिं, पवेइयं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 167]
एवं [भाग 6 पृ. 746] **एवं** [भाग 7 पृ. 273-502]
— ***आचारांग 1/5/5/162***

वही सत्य और नि:शंक है, जो तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित है ।

18. दुःख-निरोध

समुप्पाद मयाणंता, किह नाहिंति संवरं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 205]

– ***सूत्रकृतांग 1/1/3/10***

जो दुःखोत्पत्ति का कारण ही नहीं जानते, वह उसके निरोध का कारण कैसे जान पायेंगे ?

19. अधर्म से दुःखोत्पत्ति

अमणुण्ण समुप्पादं दुक्खमेव वियाणिया ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 205]

– ***सूत्रकृतांग 1/1/3/10***

अशुभ अनुष्ठान अर्थात् अधर्माचरण से दुःख की उत्पत्ति होती है ।

20. कहाँ अँध, कहाँ दर्शक !

अंधो कहिं कत्थ य देसियव्वं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 222]

– ***बृहत्कल्प भाष्य 3253***

कहाँ अँधा और कहाँ पथप्रदर्शक ? (अँधा और मार्गदर्शक, यह कैसा मेल ?)

21. स्वच्छंदता

कुलं विणासेइ सयं पयाता, न दीव कूलं कुलडा उ नारी ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 222]

– ***बृह. भाष्य 3251***

स्वच्छंदाचरण करनेवाली नारी अपने दोनों कुलों (पितृकुल व श्वसुरकुल) को वैसे ही नष्ट कर देती है, जैसे कि स्वच्छन्द बहती हुई नदी अपने दोनों कूलों (तटों) को ।

22. उपदेश के अयोग्य

उपदेशो न दातव्यो, यादृशे तादृशे जने ।
पश्य वानर मूर्खेण, सुगृही निर्गृही कृतः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 222]
— ***बृहत्कल्पवृत्ति सभाष्य 1 उद्देश***

जैसे तैसे व्यक्ति को उपदेश नहीं देना चाहिए। देखो ! मूर्ख बन्दर ने अच्छे घरवाले को घरविहीन बना दिया ।

23. वसुंधरा

वसुंधरेयं जह वीर भोज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 222]
— ***बृहदावश्यक भाष्य 3254***

यह वसुन्धरा वीरभोग्या है ।

24. निर्वाण-प्राप्ति

एवं भाव विसोहीए णेव्वाण मभिगच्छती ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 331]
— ***सूत्रकृतांग 1/1/2/27***

भावों की विशुद्धि से निर्वाण प्राप्त करता है ।

25. मिथ्यादृष्टि जीव

एवं तु समणा एगे, मिच्छदिट्ठी अणारिया ।
संसार पारकंखीं ते, संसारं अणुपरिट्ठंति त्तिबेमि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 332]
— ***सूत्रकृतांग 1/1/2/32***

कई मिथ्यादृष्टि, अनार्य श्रमण संसार सागर से पार जाना चाहते हैं, लेकिन वे संसार में ही बार-बार पर्यटन करते रहते हैं ।

26. अज्ञानी साधक

जहा आसाविणिं णावं जाति अंधो दुरूहिया ।
इच्छेज्जा पारमागंहुं अंतरा य विसीयती ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 332]
— ***सूत्रकृतांग 1/1/2/31***

अज्ञानी साधक उस जन्मान्ध व्यक्ति के समान है, जो सछिद्र नौका पर चढ़कर नदी किनारे पहुँचना तो चाहता है, किन्तु किनारा आने से पहले ही बीच प्रवाह में डूब जाता है ।

27. शुभाशुभ कर्म

शुभाशुभानि कर्माणि, स्वयं कुर्वन्ति देहिनः ।
स्वयमेवोपभुज्यंते, दुःखानि च सुखानि च ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 334]
— ***उत्तराध्ययनसूत्र सटीक 1 अ.***

प्राणी स्वयं शुभाशुभ कर्म का कर्ता है और स्वयं ही सुख-दुःख का भोक्ता है ।

28. विघ्न

श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति महतामपि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 338]
— ***विशेषावश्यक भाष्य बृहद्वृत्ति पृ. 17***

महापुरुषों को भी शुभकार्य में अनेक विघ्न-बाधाएँ आती हैं ।

29. कामभोगासक्त मानव

सत्ता कामेहिं माणवा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 342]
— ***आचारांग 1/6/1/180***

मनुष्य काम-भोगों में आसक्त होते हैं ।

30. दुःखरूप संसार

पास ! लोए महब्भय ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 342]
— ***आचारांग 1/6/1/180***

देखो ! यह संसार महाभयवाला है ।

31. बालधृष्ट

अट्टे से बहु दुक्खे इति बाले पकुव्वति (पगब्भइ) ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 342]

— ***आचारांग 1/6/1/180***

वेदना से पीड़ित मनुष्य बहुत दुःख पाता है, इसलिए वह बाल [अज्ञानी] प्राणियों को क्लेश पहुँचाता हुआ धृष्ट (बेदर्द) हो जाता है ।

32. भावान्धकार

संति पाणा अंधा तमंसि वियाहिता ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 342]

— ***आचारांग 1/6/1/180***

अंधकार में होनेवाले प्राणी अंधे कहे गए हैं ।

33. देह पोषण के लिए वध त्याज्य

अबलेण वहं गच्छंति सरीरेण पभंगुरेण ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 342]

— ***आचारांग 1/6/1/180***

इस निःसार क्षणभंगुर देह के पोषण के लिए मनुष्य अन्य जीवों के वध की इच्छा करते हैं ।

34. संसारी जीव दुःखी

बहु दुक्खा हु जंतवो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 342]

— ***आचारांग 1/6/1/180***

संसारी जीव निश्चय ही बहुत दुःखी है ।

35. कर्मानुसार फल

सव्वो पुव्वकयाणं कम्माणं पावए फल विवागं ।
अवराहेसु गुणेसु य, णिमित्त मित्तं परो होइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 342]

— ***सूत्रकृतांग 1/12***

सभी मनुष्य अपने पूर्वकृत कर्मों के अनुसार फल पाते हैं। अपराध और गुणों में दूसरे लोग तो मात्र निमित्त बनते हैं।

36. स्वल्प सुख भी नहीं

दुःखं स्त्री कुक्षि मध्ये प्रथमिह भवे गर्भवासे नराणाम्,
बालत्वे चापि दुःखं मलललित तनुस्त्रीपयः पानमिश्रम्।
तारूण्ये चापि दुःखं भवति विरहजं वृद्धभावोऽप्यसारः,
संसारे रेमनुष्याः! वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किञ्चिद्॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 342]
एवं [भाग 4 पृ. 2549]
— ***आगमीय सूक्तावलि पृ. 25***
— ***धर्मरत्नप्रकरण सटीक*** —

इस संसार में पहले तो गर्भावास में ही मनुष्यों को जननी की कुक्षि में दुःख प्राप्त होता है। उसके बाद बाल्यावस्था में भी मलपरिपूर्ण शरीर स्त्री के स्तनपयः (दूध) पान से मिश्रित दुःख होता है और युवावस्था में भी विरह आदि से दुःख उत्पन्न होता है तथा वृद्धावस्था तो बिल्कुल निःसार यानी कफ-वात-पित्तादि के दोषों से भरी हुई है। इसलिए हे मनुष्यों! यदि संसार में थोड़ा भी सुख का लेश हो तो बताओ ?

37. कृतज्ञता

प्रथम वयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः,
शिरसि निहित भारा नारिकेरा नराणाम्।
उदकममृतकल्पं दद्युराजीवितान्तं,
नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 354]
— ***धर्मसंग्रह सटीक 1 अधिकार***

नारियल के छोटे पौधे को मनुष्य जल से सींचते हैं। अपनी प्रथम अवस्था में पीये गये उस थोड़े से जल को याद रखते हुए वे नारियल के वृक्ष अपने सिर पर सदा जल का भार उठाये रखते हैं और जीवन पर्यन्त मनुष्यों को अमृत के तुल्य स्वादिष्ट जल देते रहते हैं। सच है, साधुजन किसी के किए हुए उपकार को कभी भूलते नहीं है।

38. यथा वाणी तथा क्रिया

करणसच्चेवट्टमाणो जीवो जहावाई तहाकारी यावि भवइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 372]

— *उत्तराध्ययन 29/53*

करण सत्य — (कार्य की सचाई) व्यवहार में स्पष्ट रहनेवाली आत्मा 'जैसी कथनी वैसी करनी' का आदर्श प्राप्त करती है ।

39. लाभ, लोभ

जहा लाभो तहा लोभो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 387]

— *उत्तराध्ययन 8/17*

ज्यों — ज्यों लाभ होता है, त्यों — त्यों लोभ होता है ।

40. लाभ से लोभ

लाभा लोभो पवड्ढई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 387]

— *उत्तराध्ययन 8/17*

लाभ से लोभ बढ़ता जाता है ।

41. निःस्नेह

विजहित्तु पुव्व संजोगं, न सिणेहं कहिंचि कुव्वेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 388]

— *उत्तराध्ययन 8/2*

साधक पूर्व संयोगों को छोड़ देने पर फिर किसी भी वस्तु में स्नेह न करें ।

42. स्नेह में निःस्नेह

असिणेह सिणेह करेहिं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 388]

— *उत्तराध्ययन 8/2*

जो तुम्हारे प्रति स्नेह करे, उनसे भी तुम निःस्नेहभाव से रहो ।

43. दुर्गति रक्षण – जिज्ञासा

अधुवे असासयम्मी, संसारम्मि दुक्ख पउराए ।
किं नाम होज्ज तं कम्मगं, जेणाहं दोग्गइं न गच्छेज्जा ?

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 388]

– *उत्तराध्ययन 8/1*

इस अध्रुव, अशाश्वत और दुःखमय संसार में ऐसा कौन-सा कर्म है ? कौन-सा क्रियानुष्ठान है जिसे अपना कर जीव दुर्गति में जाने से बच सके ?

44. कामदुस्त्याज्य

दुपरिच्चया इमे कामा, नो सुजहा अधीर पुरिसेहिं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 389]

– *उत्तराध्ययन 8/6*

काम-भोगों का त्याग करना अत्यन्त कठिन हैं । अधीर पुरुष तो इन्हें आसानी से छोड़ ही नहीं सकते ।

45. पापदृष्टिः नरक-हेतु

मंदा निरयं गच्छंति, बाला पावियाहिं दिट्ठीहिं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 389]

– *उत्तराध्ययन 8/7*

मन्द बुद्धिवाले तथा अज्ञानी पुरुष अपनी पापमयी दृष्टि के कारण ही नरक में जाते हैं ।

46. अज्ञ-श्लेष्म की मक्खी

बाले य मंदिए मूढे, वज्झई मच्छिया खेलम्मि ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 389]

– *उत्तराध्ययन 8/5*

अज्ञानी और मंदमति मूढ जीव संसार में उसी प्रकार फंस जाते हैं, जैसे श्लेष्म-कफ में मक्खी ।

47. अलिप्त साधक

सव्वेसु काम जाएसु, पासमाणो न लिप्पई ताई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 389]

— ***उत्तराध्ययन 8/4***

सभी काम-भोगों में दोष देखता हुआ आत्मरक्षक साधक उनमें कभी लिप्त नहीं होता ।

48. हिंसा से सर्वथाविरत

जगनिस्सिएहिं भूएहिं, तस नामेहिं थावरेहिं च ।
नो तेसिं आरभे दंडं, मणसा वयसा कायसा चेव ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 390]

— ***उत्तराध्ययन 8/10***

लोकाश्रित जो भी त्रस और स्थावर जीव हैं, उनके प्रति मन-वचन और काया — किसी भी प्रकार से दण्ड का प्रयोग न करें ।

49. प्राणवध अनुमोदी

न हु पाणवहं अणु जाणे, मुच्चेज्ज कयाइ सव्वदुक्खाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 390]

— ***उत्तराध्ययन 8/8***

प्राणवध का अनुमोदन करनेवाला पुरुष कदापि सर्वदुःखों से मुक्त नहीं हो सकता ।

50. आहार की अनासक्ति

जायाए घासमेसेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 390]

— ***उत्तराध्ययन 8/11***

साधक जीवन-निर्वाह के लिए खाए ।

51. रस-अलोलुप

रस गिद्धे न सिया भिक्खाए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 390]

— ***उत्तराध्ययन 8/11***

मुनि रसलोलुप न बने ।

52. तृष्णाः दूष्पूर्णा

दुप्पूरए इमे आया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 391]

— ***उत्तराध्ययन 8/16***

यह आत्मस्थित तृष्णा कठिनाई से भरी जानेवाली है ।

53. बोधि-दुर्लभ

बहु कम्मलेवलिताणं, बोही होई सुदुल्लहा तेसिं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 391]

— ***उत्तराध्ययन 8/15***

जो आत्माएँ बहुत अधिक कर्मों से लिप्त हैं, उन्हें बोधि प्राप्त होना अति दुर्लभ है ।

54. दुष्पूरातृष्णा

कसिणंपि जो इमं लोयं, पडिपुन्नं दलेज्ज एक्कस्स ।
तेणावि से ण संतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 391]

— ***उत्तराध्ययन 8/16***

धन-धान्य से भरा हुआ यह समग्र विश्व भी यदि लोभी व्यक्ति को दे दिया जाय, तब भी वह उससे सन्तुष्ट नहीं हो सकता । इस प्रकार आत्मा की यह तृष्णा बड़ी दूष्पूरा (पूर्ण होना कठिन) है ।

55. कामासक्त

ते कामभोग रस गिद्धा, उववज्जंति आसुरे काए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 391]

— ***उत्तराध्ययन 8/14***

जो साधक काम-भोग के रस में आसक्त हो जाते हैं, वे असुर जातिवाले निम्न श्रेणी के देवों में उत्पन्न होते हैं ।

56. धर्म है सन्तजनों का शणगार

धम्मं च पेसलं नच्चा, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 392]

— *उत्तराध्ययन 8/19*

धर्म को अत्यन्त कल्याणकारी—मनोज्ञ जानकर भिक्षु उसीमें अपनी आत्मा को संलग्न कर दें ।

57. नरक द्वार है अहंकार

सेलथंभ समाणं माणं अणुपविट्ठे जीवे ।
कालं करेइ णेरति एसु उववज्जति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 396]

— *स्थानांग 4/4/2/293 (2)*

पत्थर के खंभे के समान जीवन में कभी नहीं झुकनेवाला अहंकार आत्मा को नरक गति की ओर ले जाता है ।

58. दंभ

वंसीमूलकेतणा समाणं मायं अणुपविट्ठे जीवे ।
कालं करेति णेरइएसु उववज्जति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 396]

— *स्थानांग 4/4/2/293 (1)*

बाँस की जड़ के समान अतिनिबिड़-गाँठदार दंभ (कपट) आत्मा को नरक गति की ओर ले जाता है ।

59. लोभ, रंगमजीठ

किमिरागरत्तवत्थ समाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे ।
कालं करेति णेरइएसु उववज्जति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 396]

— *स्थानांग 4/4/2/293 (3)*

मजीठ के रंग के समान जीवन में कभी नहीं छूटनेवाला लोभ आत्मा को नरक गति की ओर ले जाता है ।

60. क्रोध का फल

कोहो पीइं पणासेइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 399]

— *दशवैकालिक 8/37*

क्रोध प्रीति का नाश करता है ।

61. विनयनाशक

माणो विणय नासणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 399]

— *दशवैकालिक 8/37*

मान विनय का नाश करता है ।

62. मित्रतानाशक

माया मित्ताणि नासेइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 399]

— *दशवैकालिक 8/37*

माया मित्रता का नाश करती है ।

63. सर्वनाशक

लोभो सव्व विणासणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 399]

— *दशवैकालिक 8/37*

लोभ सभी सद्गुणों का विनाश कर डालता है ।

64. मानजय – प्रक्रिया

माणं मद्दवया जिणे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 399]

— *दशवैकालिक 8/38*

अभिमान को मृदुता – नम्रता से जीतना चाहिए ।

65. दम्भ-विजय विधि

मायं चऽज्जव भावेण ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 399]

— ***दशवैकालिक 8/38***

माया को सरलता से जीतना चाहिए ।

66. क्रोध-विजय

उवसमेण हणे कोहं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 399]

— ***दशवैकालिक 8/38***

क्रोध को शांति से समाप्त करें ।

67. लोभ-विजय

लोभं संतोसओ जिणे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 399]

— ***दशवैकालिक 8/38***

लोभ को सन्तोष से जीतना चाहिए ।

68. दोष-परित्याग

कोहं माणं च मायं च, लोभं च पाववड्ढणं ।
वमे चत्तारि दोसेउ, इच्छंतो हियमप्पणो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 399]

— ***दशवैकालिक 8/36***

क्रोध, मान, माया और लोभ — ये चारों पाप की वृद्धि करनेवाले हैं; अत: आत्मा का हित चाहनेवाला साधक इन दोषों का परित्याग कर दें ।

69. कषाय चतुष्क

कोहो य माणो य अणिग्गहीया,
माया य लोभो य पवड्ढमाणा ।

चत्तारि एए कसिणा कसाया,
सिंचंति मूलाइं पुणब्भवस्स ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 399]

— ***दशवैकालिक 8/39***

अनिग्रहीत क्रोध और मान तथा प्रवर्द्धमान माया और लोभ ये चारों संक्लिष्ट कषाय पुनः पुनः जन्म-मरणरूप संसार वृक्ष की जड़ों को सींचते रहते हैं अर्थात् पुनर्जन्म की जड़ें सींचते हैं ।

70. उपेक्षा मत करो

अणथोवं वणथोवं, अग्गीथोवं कसायथोवं च ।
न हु भे वीससियव्वं, थोवंपि हु तं बहुं होइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 400]

— ***आवश्यक निर्युक्ति 120***

ऋण, व्रण (घाव), अग्नि और कषाय — यदि इनका थोड़ा-सा अंश भी है, तो उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । ये अल्प भी समय पर बहुत विस्तृत हो जाते हैं ।

71. वीतरागता

कसाय पच्चक्खाणेणं वीयरागभावं जणयइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 401]

— ***उत्तराध्ययन 29/38***

कषाय-प्रत्याख्यान (त्याग) से जीव वीतराग भाव को प्राप्त होता है। (कषाय — त्याग से वीतरागता प्राप्त होती है ।)

72. वीतराग-समभावी

वीयराग भाव पडिवन्ने वियणं जीवे समसुह दुक्खे भवइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 401]

— ***उत्तराध्ययन 29/38***

वीतराग भाव को प्राप्त हुआ जीव सुख-दुःख में समभावी हो जाता है ।

73. विकथा

जो संजओ पमत्तो, रागद्दोसवसगओ परिकहेइ ।
साउ विकहा पवयणे, पणत्ता धीर पुरिसेहिं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 402]
— ***दशवैकालिक निर्युक्ति 211***

जो संयमी होते हुए भी प्रमत्त है, और राग-द्वेष के वशवर्ती होकर, जो राजभक्तादि कथा करता है, उसे जिनशासन में 'विकथा' कहा गया है ।

74. कथा

तव संजम गुणधारी, जं चरण रया कहिंति सब्भावं ।
सव्वं जग जीवहियं, सा उ कहा देसिया समए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 402]
— ***दशवैकालिक निर्युक्ति 210***

तप — संयम आदि गुणों से युक्त मुनि सद्भावपूर्वक सर्व जगजीवों के हित के लिए जो कथन करते हैं; उसे 'कथा' कहा गया है ।

75. ध्यान

चित्तस्सेगग्गया हवइ झाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 407]
— ***आवश्यक निर्युक्ति 5/1477***

किसी एक विषय पर चित्त को स्थिर — एकाग्र करना ध्यान है ।

76. प्रायश्चित्त

पावं छिंदइ जम्हा पायच्छित्तंति भण्णइ तेणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 413]
एवं [भाग 5 पृ. 129-135]
— ***पंचाशक सटीक विवरण 16/3***

जिसके द्वारा पाप का छेदन होता है, उसे 'प्रायश्चित्त' कहते हैं ।

77. धर्म-मूल

विणयमूलो धम्मोत्ति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 418]

— *अंगचूलिका 5 अ.*

विनय धर्म का मूल है ।

78. कायोत्सर्ग से विशुद्धि

काउस्सग्गेणं तीय पडुप्पन्नं पायच्छित्तं विसोहेइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 428]

— *उत्तराध्ययन 29/1114/14*

कायोत्सर्ग से जीव अतीत और वर्तमान के अतिचारों की विशुद्धि करता है ।

79. प्रायश्चित्त से हल्कापन

विशुद्धपायच्छित्ते य जीवे निवुयहियए ओहरिय भरूव्व ।
भारवेह पसत्थज्झाणोवगए सुहं सुहेणं विहरइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 428]

— *उत्तराध्ययन 29/14*

विशुद्ध प्रायश्चित्त कर यह जीव सिर पर से भार के उतर जाने से एक भारवाहकवत् हल्का होकर सद्ध्यान में रमण करता हुआ सुखपूर्वक विचरता है ।

80. काया-नियन्त्रण

संरंभ समारंभे, आरंभे य तहेव य ।
वइं यं (वयं) पवत्तमाणं त्तु, नियंटेज्ज जयं जई ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 449]

— *उत्तराध्ययन 24/23*

यतनाशील यति संरंभ, समारंभ और आरंभ में प्रवृत्त होती हुई वाणी का नियन्त्रण करें ।

81. संयमासंयम

गरहा संजमे, नो अगरहा संजमे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 497]

— *भगवती सूत्र 1/9/21/(6)*

गर्हा (आत्मालोचन) संयम है, अगर्हा संयम नहीं है ।

82. आत्मा ही सामायिक

आयाणे अज्जो ! सामाइए,

आयाणे अज्जो ! सामाइयस्स अट्ठे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 497]

— *भगवतीसूत्र 1/9/21/(4)*

हे आर्य ! आत्मा ही सामायिक (समत्वभाव) है और आत्मा ही सामायिक का अर्थ (विशुद्धि) है ।

83. उत्तम पुरुष वैडूर्यरत्नवत्

सुचिरंपि अच्छमाणो, वेरुलिओ कायमणि य ओमीसो ।
न उवेइ कायभावं पाहन्न गुणेण नियए ण ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 517-613]

— *ओघनिर्युक्ति 772*

वैडूर्यरत्न काँच की मणियों में कितने ही लम्बे समय तक क्यों न मिला रहे, वह अपने श्रेष्ठ गुणों के कारण रत्न ही रहता है, कभी काँच नहीं होता । (सदाचारी उत्तम पुरुष का जीवन भी ऐसा ही होता है ।)

84. संग का रंग

जह नाम महुर सलिलं, सायर सलिलं कमेण संपत्तं ।
पावेइ लोणभावं, मेलण दोसाणु भावेणं ॥
एवं खु सीलवंतो, असील वंतेहि मीलिओ संतो ।
पावइ गुण परिहाणिं, मेलण दोसाणु भावेणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 518]

— *आवश्यक निर्युक्ति 3/1133-1134*

जिस प्रकार मधुर जल, समुद्र के खारे जल के साथ मिलने पर खार हो जाता है, उसी प्रकार सदाचारी पुरुष दुराचारियों के संसर्ग में रहने के कारण दुराचार से दूषित हो जाता है ।

85. जिनशासन-मूल

विणओ सासणे मूलं, विणीओ संजओ भवे ।
विणयाओ विप्पमुक्कस्स, कओ धम्मो कओ तवो ?

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 523]
– ***विशेषावश्यक भाष्य 3468***

विनय जिनशासन का मूल है। विनीत ही संयमी हो सकता है। जो विनय से हीन है, उसका क्या धर्म और क्या तप ?

86. विनयानुशासन

जम्हा विणयइ कम्मं, अट्ठविहं चाउरंत मोक्खाय ।
तम्हा उ वयंति विओ, विणयंति विलीन संसारा ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 523]
– ***स्थानांगटीका 6/531***
एवं आवश्यक निर्युक्ति 867

जिससे आठ प्रकार के कर्म दूर होते हैं, चारों गतियों एवं संसार का विलय होता है, उसे 'विनय' कहते हैं।

87. नमस्कार आते जाते

जह दूओ रायाणं, णमिउं कज्जं निवेइउं पच्छा ।
वीसज्जिओ वि वंदिय, गच्छइ साहूवि इमेव ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 525]
– ***आवश्यक निर्युक्ति 3/1243 (43)***

दूत जिस प्रकार राजा आदि के समक्ष निवेदन करने से पहले भी और पीछे भी नमस्कार करता है, वैसे ही शिष्य को भी गुरुजनों के समक्ष जाते और आते समय नमस्कार करना चाहिए।

88. कर्म-क्षय

साहु खवंति कम्मं, अणेगभवसंचियमणंतं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 525]
– ***आवश्यक निर्युक्ति 3/1244-1431***

श्रमण अनेक भवों के संचित अनन्त कर्मों को क्षय कर देता है।

89. स्वयं कृत दुःख

किं भया पाणा ?....
दुक्ख भया पाणा....दुक्खे केण कडे ?
जीवेणं कडे पमादेण ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 526]
— *स्थानांग 3/3/2/174*

प्राणी किससे भय पाते हैं ? दुःख से। दुःख किसने किया है ? स्वयं आत्माने, अपनी ही भूल से।

90. बाह्य-क्रिया विरोधी

बाह्य भावं पुरस्कृत्य, ये क्रिया व्यवहारतः ।
वदने कवलक्षेपं, विना ते तृप्तिकाङ्क्षिणः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 551]
— *ज्ञानसार 9/4*

जो दर्शन-पूजन, सेवा, गुरु-भक्ति, तपश्चरण आदि क्रियाओं को बाह्य भाव बताकर व्यावहारिक क्रिया का निषेध करते हैं, वे मुँह में कौर डाले बिना ही भूख की तृप्ति करना चाहते हैं।

91. क्रिया की अपेक्षा

स्वानुकूलां क्रियां काले, ज्ञानपूर्णोऽप्यपेक्षते ।
प्रदीपः स्वप्रकाशोऽपि तैल पूर्त्यादिकं यथा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 551]
— *ज्ञानसार 9/3*

स्वयं प्रकाशी दीपक भी तेल-पूर्ति और बत्ती आदि क्रिया की अपेक्षा रखते हैं, वैसे ही पूर्ण ज्ञानी को भी स्व अनुकूल क्रिया के योग्य अवसर में क्रिया करनी चाहिए।

92. तिन्नाणं-तारयाणं

ज्ञानी क्रिया परः शान्तो, भावितात्मा जितेन्द्रियः ।
स्वयं तीर्णो भवाम्बोधेः, परॉंस्तारयितुं क्षमः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 551]
— *ज्ञानसार 9/1*

सम्यग्ज्ञानी, शुद्ध क्रिया में तत्पर, शांत, भव्यात्मा, जितेन्द्रिय महात्मा इस भव संसार से स्वयं पार उतरते हैं और अन्य भव्य आत्माओं को भी पार लगाने में समर्थ होते हैं ।

93. थोथा ज्ञान निरर्थक

क्रिया विरहितं हन्त ! ज्ञान मात्र मनर्थकम् ।
गतिं बिना पथज्ञोऽपि, नाप्नोति पुरमीप्सितम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 551]
— *ज्ञानसार 9/2*

क्रियारहित ज्ञान निरर्थक है । पथ का ज्ञाता भी गमन क्रिया के बिना इच्छित नगर में नहीं पहुँच सकता ।

94. क्रिया की उपादेयता

गुणवृद्धयै ततः कुर्यात् क्रियामस्खलनाय वा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 552]
— *ज्ञानसार 9/7*

गुण की वृद्धि हेतु और उसमें स्खलन न हो जाये, इसलिए क्रिया करना चाहिए ।

95. क्रिया योग

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 553]
— *पातंजल योगदर्शन 2/1*

तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान (निष्काम भाव से ईश्वर की भक्ति, तल्लीनता) यह तीन प्रकार का क्रियायोग है अर्थात् कर्मप्रधान योग साधना है ।

96. पठित मूर्ख

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः,
यस्तु क्रियावान् पुरूषः स विद्वान् ।
संचित्यतामातुरमौषधं हि,
न ज्ञानमात्रेण करोत्यरोगम् ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 554]
– ***हितोपदेश 1/167***

पुरुष शास्त्रों को पढ़कर भी मूर्ख ही रह जाते हैं। वास्तव में जो पुरुष कर्म करता है, वह विद्वान् है। अच्छी तरह से सोचकर की गई औषध के नामोच्चारण मात्र से रोगी का रोग नष्ट नहीं होता है।

97. क्रिया ही फलदायिनी

क्रियैव फलदा पुंसां, न ज्ञानं फलदं मतम् ।
यतः स्त्री-भक्ष्य भोगज्ञो, न ज्ञानात् सुखभाग् भवेत् ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 554]
– ***नयोपदेश सटीक 129***

वास्तवमें क्रिया ही फल देने वाली हैं, ज्ञान नहीं; क्योंकि स्त्री, भोजन और भोग का जानकार भी मात्र ज्ञान से सुखी नहीं होता, उसे क्रिया करनी ही पड़ती है।

98. काल दुरतिक्रम

कालः पचति भूतानि, कालः संहरति प्रजाः ।
कालः सुप्तेषु जार्गति, कालोहि दुरतिक्रमः ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 555]
– ***चाणक्य नीतिदर्पणः (चाणक्यशास्त्र) 6/7***

काल ही प्राणियों को खाता है। काल ही प्राणियों का संहार करता है। सब सो जाने पर भी वह जागता रहता है। काल का अतिक्रमण करना बड़ा दुष्कर है।

99. ज्ञानपूर्वक आचरण

पढमं नाणं तओ दया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 556]

— *दशवैकालिक 4/33*

पहले ज्ञान फिर तदनुसार दया अर्थात् आचरण ।

100. अज्ञानी

अन्नाणी किं काही ? किं वा नाहिइ छेय पावगं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 556]

— *दशवैकालिक 4/33*

अज्ञानी आत्मा क्या करेगा ? वह पुण्य-पाप को कैसे जान पाएगा ?

101. कर्म

ण कम्मुणा कम्म खवेंति बाला ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 557]

— *सूत्रकृतांग 1/12/15*

अज्ञानी मनुष्य कर्म (पापानुष्ठान) से कर्म का नाश नहीं कर पाते ।

102. संतोषी

संतोसिणो णोपकरेंति पावं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 557]

— *सूत्रकृतांग 1/12/15*

संतोषी साधक कभी कोई पाप नहीं करते ।

103. लोभ-भय मुक्त

मेधाविणो लोभ भयावतीता ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 557]

— *सूत्रकृतांग 1/12/15*

ज्ञानी लोभ और भय से सदा मुक्त होते हैं ।

104. अकर्म से कर्म-क्षय

अकम्मुणा कम्म खवेंति धीरा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 557]

— *सूत्रकृतांग 1/12/15*

धीर पुरुष अकर्म (पापानुष्ठान के निरोध) से कर्म का क्षय कर देते हैं ।

105. विषयासक्त दुःखी

विसन्ना विसयं गणाहिं,
दुहतो विलोयं अणुसंचरंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 557]

— *सूत्रकृतांग 1/12/14*

विषयासक्त आत्माएँ विषयों के कारण से दोनों ही लोक में विविध तरीके से दुःखी होती हैं ।

106. तत्त्वदर्शी

ते आततो पासति सव्वलोए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 558]

— *सूत्रकृतांग 1/12/18*

तत्त्वदर्शी समग्र प्राणी जगत् को अपनी आत्मा के समान देखता है ।

107. ज्ञानी आत्मा

अलमप्पणो होति अलं परेसिं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 558]

— *सूत्रकृतांग 1/12/19*

ज्ञानी आत्मा ही 'स्व' और 'पर' के कल्याण में समर्थ होता है ।

108. भवान्तकर्ता

बुद्धा हुते अंतकडा भवंति ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 558]

— *सूत्रकृतांग 1/12/16*

निश्चत रूप से ज्ञानी संसार का अन्त कर देते हैं।

109. अवश्यमेव प्राप्तव्य शुभाशुभ फल

अंसि च लोए अदुवा परत्था,

सतग्गसो वा तह अन्नहा वा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 608]

— *सूत्रकृतांग 1/7/4*

कृत कर्म इस जन्म में अथवा अगले जन्म में जिस तरह भी किए गए हों, वे उसी तरह से अथवा अन्य प्रकार से कर्ता को अपना फल अवश्य देते हैं।

110. जीव कर्मबंधकर्ता-भोक्ता

संसारमावन्न परं परं ते,

बंधंति वेयंति च दुण्णियाइं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 608]

— *सूत्रकृतांग 1/7/4*

संसार चक्र में परिभ्रमण करता हुआ जीव अपने दुष्कृत्यों के कारण सतत नूतन कर्म बांधता है तथा उसका फल भोगता है।

111. मरण-शरण

बहुकूर कम्मे, जं कुव्वती मिज्जति तेण बाले ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 608]

— *सूत्रकृतांग 1/7/3*

अति क्रूर कर्मा अज्ञानी जीव बार-बार जन्म लेकर जो कर्म करता है, उसीसे मरण-शरण हो जाता है।

112. स्वकर्म फल

सक्कम्मुणा विप्परियासुवेति ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 610]

– सूत्रकृतांग 1/7/11

प्रत्येक प्राणी अपने ही कृत-कर्मों से दुःख पाता है।

113. व्यर्थ क्या ?

लवण विहुणा य रसा, चक्खुविहुणा य इंदियग्गामा।
धम्मोदयाए रहिओ, सोक्खं संतोसरहियं तो ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 610]

– सूत्रकृतांग सूत्र सटीक । श्रुत. 7 अध्ययन

बिना नमक का भोजन, नयन बिना का चक्षुरिन्द्रिय का विषय, दया बिना का धर्म और सन्तोष बिना का सुख किस काम का ?

114. संसार-ज्वर

एगंत दुक्खे जरि ते व लोए।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 610]

– सूत्रकृतांग 1/7/11

यह संसार ज्वर के समान एकान्त दुःख रूप है।

115. मृत्यु-विभीषिका

गब्भाइ मिज्जंति बुयाऽबुयाणा,
पारा परे पंचसिहा कुमारा।
जुवाणगा मज्झिम–थेरगा य,
चयंति ते आउक्खए पलीणा ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 610]

– सूत्रकृतांग 1/7/10

कितने ही प्राणी गर्भावस्था में, कितने ही दूध पीते शिशु अवस्था में, तो कितने ही पंचशिख कुमारों की अवस्था में मर जाते हैं। फिर कितने ही युवा होकर तो कई प्रौढ़ होकर और कई वृद्ध होकर चल बसे हैं। इसप्रकार आयुष्य क्षय होते ही मनुष्य अपनी देह छोड़ देते हैं।

116. देह-त्याग

चयंति ते आउक्खए पलीणा।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 610]

— *सूत्रकृतांग 1/7/10*

आयुष्य क्षय होने पर जीव अपनी देह छोड़ देता है।

117. पाप-परिणाम

थणंति लुप्पंति तसंति कम्मी ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 611]

— *सूत्रकृतांग 1/7/20*

जो आत्मा पापकर्म का उपार्जन करती है, उन्हें रोना पड़ता है, दुःख भोगना पड़ता है और भयभीत होना पड़ता है।

118. श्रमणत्व से दूर

कुलाइं जे धावति साउगाइं, अहाऽऽहुसे सामणियस्स दूरे ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 611]

— *सूत्रकृतांग 1/7/23*

जो साधक स्वादिष्ट भोजनवाले घरों में दौड़ता है, वह श्रमणभाव से दूर है। ऐसा तीर्थंकरोंने कहा है।

119. अनासक्त

सद्देहिं रूवेहिं अ सज्जमाणे ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 612]

— *सूत्रकृतांग 1/7/27*

साधु, शब्द और रूप में आसक्त न बने।

120. श्रमण

सव्वेहिं कामेहिं विणीय गेहिं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 612]

— *सूत्रकृतांग 1/7/27*

मुनि सर्व कामनाओं से अपने चित्त को हटाकर शुद्ध संयम का पालन करें।

121. अज्ञात-पिंड

अण्णात पिंडेणऽधियासएज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 612]

— ***सूत्रकृतांग 1/7/27***

संयमी साधक अज्ञात पिण्ड (अपरिचित घरों से लाए हुए भिक्षान्न) से अपने जीवन का निर्वाह करें ।

122. आहार क्यों ?

भारस्स जाता मुणि भुञ्जएज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 612]

— ***सूत्रकृतांग 1/7/29***

मुनि संयम भार के निर्वाह करने के लिए ही आहार करें ।

123. अनाकूल अभयंकर, भिक्षु

अभयंकरे भिक्खू अणाविलप्पा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 612]

— ***सूत्रकृतांग 1/7/28***

विषय-कषायों से अनाकूल भिक्षु अभयदान देता रहे ।

124. मन पर संयम

दुक्खेण पुट्ठे धुयमातिएज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 613]

— ***सूत्रकृतांग 1/7/29***

नीतिवान् कष्टों के आने पर भी मन पर संयम रखें ।

125. निष्प्रपञ्ची साधक

णिद्धूयकम्मं ण पवञ्चुवेति, अक्खक्खए वा सगंडतिबेमि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 613]

— ***सूत्रकृतांग 1/7/30***

कर्मक्षय करनेवाला मुनि उसी प्रकार संसार-प्रपञ्च में नहीं पड़ता, जिस प्रकार धुरा टूटने पर गाड़ी आगे नहीं बढ़ती ।

126. श्रमण, रागद्वेष रहित

अविहम्ममाणे फलगावतट्ठी,
समागमं कंखति अंतगस्स ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 613]
— *सूत्रकृतांग 1/7/30*

हनन किया जाता हुआ मुनि छिली जाती हुई लकड़ी की भाँति राग द्वेष रहित होता है । वह शान्त भाव से मृत्यु की प्रतीक्षा करता है ।

127. इन्द्रिय-दमन

संगाम सीसेव परं दमेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 613]
— *सूत्रकृतांग 1/7/29*

जैसे योद्धा संग्राम के शीर्ष-मोर्चे पर डटा रहकर शत्रु-योद्धा का दमन करता है वैसे ही कर्म-शत्रुओं के साथ युद्ध में डटे रहकर उनका दमन करो ।

128. क्रोधजित्

कोहं विजएणं खंतिं जणयइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 686]
— *उत्तराध्ययन 29/69*

क्रोध को जीतने से जीव को क्षमा गुण की प्राप्ति होती है ।

129. क्षमा-फल

खंतीएणं परीसहे जिणइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 692]
— *उत्तराध्ययन 29/48*

क्षमा करने से जीव परिषहों को जीत लेता है ।

130. वर्तमान महान्

इणमेव खणं वियाणिया ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 703]

— *सूत्रकृतांग 1/2/3/19*

जो क्षण वर्तमान में उपस्थित है, वही महत्त्वपूर्ण है; उसे जानना चाहिए अर्थात् सफल बनाना चाहिए ।

131. सम्यक्त्व-दुर्लभ

णो सुलभं बोहिं च आहितं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 703]

— *सूत्रकृतांग 1/2/3/19*

सम्यग्ज्ञान-दर्शन रूप बोधि का मिलना सुलभ नहीं है ।

132. क्षमापना

खमावणायाए णं पल्हायण भावं जणयइ ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 715]

— *उत्तराध्ययन 29/19*

अपराध की क्षमा मांगने से चित्त आल्हादित होता है अर्थात् क्षमापना से आत्मा में प्रसन्नता की अनुभूति होती है ।

133. अल्पतुष्ट

थोवं लद्धुं न खिंसए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 739]
एवं [भाग 5 पृ. 1608

— *आचारांग 1/2/4/85*

थोड़ा मिलने पर झुंझलाए नहीं ।

134. क्षुधा सहिष्णु

हविज्ज उयरे दंते ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 739]

— *दशवैकालिक 8/29*

श्रमण भूख का दमन करनेवाला होता है । थोड़ा आहार मिलने पर भी वह कभी क्रोध नहीं करता ।

135. अज्ञानी दुःख भाजन

जावन्तिऽविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्ख सम्भवा ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 750]

– *उत्तराध्ययन 6/1*

जितने भी अज्ञानी पुरुष हैं, वे सब दुःख के पात्र हैं ।

136. सत्यान्वेषण

अप्पणा सच्चेमेसिज्जा ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 750]

– *उत्तराध्ययन 6/2*

अपनी आत्मा के द्वारा सत्य का अनुसंधान करो ।

137. मित्रता

मेत्तिं भूएसु कप्पए ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 750]

– *उत्तराध्ययन 6/2*

सभी जीवों पर मैत्री भाव रखो ।

138. जन्म-मरण चक्र

लुप्पन्ति बहुसो मूढा, संसारम्मि अणंतए ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 750]

– *उत्तराध्ययन 6/1*

मूर्ख प्राणी इस अनंत संसार में बार-बार लुप्त होते रहते हैं अर्थात् जन्म-मरण करते रहते हैं ।

139. अशरण भावना

माया पियाण्हुसा भाया, भज्जा पुत्ता य ओरसा ।
नालं ते मम ताणाय, लुप्पन्तस्स सकम्मुणा ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 750]

– *उत्तराध्ययन 6/3*

विवेकी पुरुष सोचे — माता-पिता, पुत्रवधु, भाई, भार्या तथा सुपुत्र इनमें से कोई भी अपने कर्मो से दुःख पाते हुए मेरी रक्षा करने में समर्थ नहीं हैं ।

140. अहिंसा-पालन

न हणे पाणिणो पाणे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 751]

— ***उत्तराध्ययन 6/6***

किसी भी जीव की हिंसा नहीं करें ।

141. न भाषा न पांडित्यं

न चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसासणं ?

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 751]

— ***उत्तराध्ययन 6/10***

विभिन्न भाषाओं का पांडित्य मनुष्य को दुर्गति से नहीं बचा सकता, तो भला विद्याओं का अनुशासन (अध्ययन) किसीको कहाँ से बचा सकेगा ?

142. वचनवीर

भणंता अकरेन्ता य, बंध मोक्ख पइन्निणो ।
वाया वीरिय मेत्तेणं, समासासेन्ति अप्पयं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 751]

— ***उत्तराध्ययन 6/9***

जो सिर्फ बातें करते हैं, करते कुछ नहीं, वे बन्धन और मुक्ति की बातें करनेवाले दार्शनिक वाणी के बल पर ही अपने आपको आश्वस्त किए रहते हैं ।

143. सम्यग्दर्शी

छिंद गिद्धि सिणेहं च ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 751]

— ***उत्तराध्ययन 6/4***

सम्यग्दर्शी आसक्ति तथा स्नेह को दूर करे।

144. कर्मपीड़ित जीव

पच्चमाणस्स कम्मेहिं, नालं दुक्खाओ मोअणे।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 751]

— ***उत्तराध्ययन 6/6***

कर्मों से पीड़ित प्राणी को दुःखों से छुड़ाने में कोई भी समर्थ नहीं है।

145. भय-वैर से दूर

भय-वेराओ उवरए।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 751]

— ***उत्तराध्ययन 6/6***

भय और वैर से दूर रहो।

146. अचौर्य

नाइएज्ज तणामवि।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 751]

— ***उत्तराध्ययन 6/7***

बिना आज्ञा के किसी का तृण मात्र भी नहीं लेवे।

147. आचरण जीवन में अपनाओ

आयरियं विदित्ताणं, सव्वदुक्खा विमुच्चई।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 751]

— ***उत्तराध्ययन 6/8***

कुछ लोगों की मान्यता है कि आचार को जानने मात्र से ही मनुष्य सभी दुःखों से मुक्त हो सकता है।

148. अज्ञानी-दुःखी

जे केइ सरीरे सत्ता, वन्ने रूवे य सव्वसो।
मणसा काय वक्केणं, सव्वे ते दुक्ख संभवा॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 751]

— ***उत्तराध्ययन 6/11***

जो अज्ञानी शरीर में, वर्ण में, रूप-लावण्य में, मन-वचन-काया से आसक्त हैं, वे सभी अपने लिए दुःख उत्पन्न करते हैं।

149. बंध-मोक्ष-हेतु

मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 751]

— ***ब्रह्मबिन्दूपनिषद-२***

बंध और मुक्ति का कारण मानव-मन ही है।

150. शरीर रक्षा क्यों ?

पुव्वकम्मखयट्ठाए, इमं देहं समुद्धरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 752]

— ***उत्तराध्ययन 6/13***

पूर्वकृत कर्मों को नष्ट करने के लिए इस देह की सार-संभाल रखनी चाहिए।

151. संग्रह निरपेक्ष

पक्खी पत्तं समादाया, निरवेक्खो परिव्वए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ 752]

— ***उत्तराध्ययन 6/15***

संयमी मुनि पक्षी की भाँति कल की अपेक्षा न रखता हुआ पात्र लेकर भिक्षा के लिए परिभ्रमण करें।

152. असंग्रही मुनि

संनिहिं च न कुव्वेज्जा, लेवमायाए संजए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 752]

— ***उत्तराध्ययन 6/15***

संयमी मुनि लेप लगे उतना भी संग्रह न करे, बासी न रखे।

153. अप्रमत्त

अप्पमत्तो परिव्वए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 752]

— ***उत्तराध्ययन** 6/12*

अप्रमत्त होकर विचरण करे ।

154. उर्ध्वलक्ष्य

बहिया उड्ढमादाया नावकंखे कयाइवि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 752]

— ***उत्तराध्ययन** 6/13*

महत्त्वाकांक्षी उच्च स्थिति प्राप्त करके फिर कभी भी भोगों की आकांक्षा नहीं करे ।

155. मिताहारी साधक

मायन्ने असण-पाणस्स ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 755]

— ***उत्तराध्ययन** 2/5*

साधक को खाने-पीने की मात्रा — मर्यादा का ज्ञाता होना चाहिए ।

156. अदीनता

अदीण मणसो चरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 755]

— ***उत्तराध्ययन** 2/5*

संसार में अदीनभाव से रहना चाहिए ।

157. अर्थमहत्ता

अत्थेण य वंजिज्जइ, सुतं तम्हा उ सो बलवं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 767]

— ***व्यवहारभाष्य पीठिका** 4/101*

सूत्र (मूल शब्दपाठ), अर्थ (व्याख्या) से ही व्यक्त होता है; अत: अर्थ सूत्र से भी बलवान् (महत्त्वपूर्ण) है ।

158. जितने नय, उतने मत

जावइया नयवाया, तावइया चेव होंति परसमया ।
जावइया परसमया, तावइया चेव मिच्छत्ता ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 794]
— ***सन्मति तर्क 3/47***

जितने भी नयवाद हैं, संसार में उतने ही परसमय हैं, अर्थात् मतमतान्तर हैं और जितने ही परसमय — मतमतान्तर हैं; उतने ही मिथ्यादृष्टि हैं ।

159. उपयोगिता

सीहं पालेइ गुहा, अवि हाडं तेण सा महिड्ढीया ।
तस्स पुण जोव्वणम्मी, पओअणं किं गिरि गुहाए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 804]
— ***बृहदावश्यक भाष्य 2114***

गुफा बचपन में सिंह-शिशु की रक्षा करती है, अत: तभी तक उसकी उपयोगिता है । जब सिंह तरुण हो गया तो फिर उसके लिए गुफा का क्या प्रयोजन है ?

160. जयति शासनम्

रज्जं विलुत्त सारं, जह जह गच्छो वि निस्सारो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 806]
— ***बृहदावश्यक भाष्य 937***

जैसे राजा के द्वारा ठीक तरह से देखभाल किए बिना राज्य-ऐश्वर्य हीन हो जाता है, वैसे ही आचार्य के द्वारा ठीक तरह से संभाल किए बिना संघ भी श्री हीन हो जाता है ।

161. देश कालज्ञ !

सुह साहगं पि कज्जं, करण विहूण गणुवाय संजुत्तं ।
अन्नाय देसकाले, विवत्तिमुव जाति सेहस्स ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 807]

— *निशीथ भाष्य 4803*

— *बृहदावश्यक भाष्य 931*

देश, काल एवं कार्य को बिना समझे समुचित प्रयत्न एवं उपाय से हीन किया जानेवाला कार्य, सुख-साध्य होने पर भी सिद्ध नहीं होता है।

162. मत बढ़ने दो !

नक्खेणावि हु छिज्जइ, पासाए अभिनवुट्ठितो रुक्खो ।
दुच्छेज्जो वड्ढंतो, सोच्चिय वत्थुस्स भेदाय ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 807]

— *निशीथ भाष्य 4804*

— *बृहदावश्यक 945*

प्रासाद की दीवार में फूटनेवाला नया वृक्षांकुर प्रारंभ में नाखून से भी उखाड़ा जा सकता है, किन्तु वही बढ़ते-बढ़ते एक दिन कुल्हाड़ी से भी दुच्छेद्य हो जाता है; और अन्ततः प्रासाद को ध्वस्त कर डालता है।

163. कार्यसिद्धि

सम्पत्ती य विपत्ती य, होज्ज कज्जेसु कारगं पाप ।
अणुवायतो विपत्ती, संपत्ती कालुवाएहिं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 808]

— *निशीथ भाष्य 4808*

— *बृहदावश्यक भाष्य 949*

कार्य करनेवाले को लेकर ही कार्य की सिद्धि या असिद्धि फलित होती है। समय पर ठीक तरह से करने पर कार्य सिद्ध होता है और समय बीत जाने पर या विपरीत साधन से कार्य नष्ट हो जाता है।

164. मोहदर्शी-गर्भदर्शी

जे मोहदंसी से गब्भदंसी,
जे गब्भदंसी से जम्मदंसी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 840]

— *आचारांग 1/3/4/130*

जो मोहदर्शी होता है वह गर्भदर्शी होता है और जो गर्भदर्शी होता है वह जन्मदर्शी होता है (जो मोहनीय कर्म के विवश होकर के सब जगह मोहित होता है, वह गर्भ-जन्म को देखता है और जो गर्भदर्शी होता है; वही संसार में जन्म लेता है)।

165. स्तुति-फल

चउव्वीसत्थएणं दंसणविसोहिं जणयइ ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 849]

– *उत्तराध्ययन 29/11*

चौवीस तीर्थंकरों की स्तुति करने से आत्मा सम्यग्दर्शन की विशुद्धि करता है।

166. दुर्विनीत

पुरिसम्मि दुव्विणीए, विणय विहाणं न किंचि आइक्खे ।
नवि दिज्जइ आभरणं, पलियत्तियकन्न हत्थस्स ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 855]

– *निशीथ भाष्य 6221*

जो व्यक्ति दुर्विनीत है, उसे सदाचार की शिक्षा नहीं देना चाहिए। भला जिसके हाथ-पैर कटे हुए हैं, उसे कंकण और कुण्डलादि अलंकार क्या दिए ज़ायँ ?

167. ज्ञानमद

मद्दवकरणं नाणं तेणेव उजे मदं समुवहंति ।
ऊणग भायण सरिसा, अगदो वि विसायते तेसिं ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 855]

– *निशीथ भाष्य 6222*

– *बृहदावश्यक भाष्य 783*

ज्ञान मानव को मृदु बनाता है, किंतु कुछ मनुष्य उससे भी मदोद्धत होकर 'अधजलगगरी' की भाँति छलकने लग जाते हैं, उन्हें अमृत स्वरूप औषधि भी विष बन जाती है।

168. ज्ञान से मृदु

मद्दव करणं नाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 855]

— ***निशीथ भाष्य 6222***

— ***बृहदावश्यक भाष्य 783***

ज्ञान मनुष्य को मृदु (कोमल) बनाता है ।

169. अनुकम्पनीय

बाला य बुड्ढा य अजंगमा य,
लोगे वि एते अणुकंपणिज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 857]

— ***बृहदावश्यक भाष्य 4342***

बालक, वृद्ध और अपंग व्यक्ति, विशेष अनुकंपा (दया) के योग्य होते हैं ।

170. घट छिद्र

न य मूल विभिन्नए थडे, जलमादीणि धरेइ कत्थइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 859]

— ***बृहत्कल्प भाष्य 4363***

जिस घड़े के पेंदे में छेद हो गया हो, उसमें जल आदि कैसे टिक सकते हैं ?

171. चातुर्मासिक प्रायश्चित्त

सोऊण ऊ गिलाणं, पंथे गामे य भिक्खवेलाए ।
जइ तुरियं नागच्छइ, लग्गइ गुरूए स चउमासे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 877]

— ***निशीथ भाष्य 2970***

— ***बृहदावश्यक भाष्य 3769***

विहार करते हुए, गाँव रहते हुए, भिक्षाचर्या करते हुए यदि सुन ले कि कोई साधु-साध्वी बीमार है, तो शीघ्र ही वहाँ पहुँचना चाहिए । जो साधु शीघ्र नहीं पहुँचता है, उसे गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है ।

172 सहज सेवा

जह भमर महुयरिगणा, निवतंती कुसुमियम्मि चूयवणे ।
इय होइ निवइ अव्वं, गेल को कइवय जढेणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 877]
— ***निशीथ भाष्य 2971***

जिस प्रकार कुसुमित उद्यान को देखकर भौंरे उस पर मंडराने लग जाते हैं उसी प्रकार किसी साथी को दुःखी देखकर उसकी सेवा के लिए अन्य साथियों को सहज भाव से उमड़ पड़ना चाहिए ।

173. रोगी परिचर्या

कुज्जा भिक्खू गिलाणस्स, अगिलाए समाहिए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 894]
एवं [भाग 5 पृ. 547]
— ***सूत्रकृतांग 1/3/3/13***

भिक्षु प्रसन्न व शान्त भाव से अपने रुग्ण साथी की परिचर्या करें ।

174. धर्म-बीज

दुःखितेषु दयाऽत्यन्तमद्वेषो गुणवत्सु च ।
औचित्यासेवनं चैव, सर्वत्रैवाविशेषतः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 899]
एवं [भाग 4 पृ. 2731]
— ***योगदृष्टि समुच्चय 32***
— ***एवं धर्मबिन्दु 2/7/46***

दुःखी प्राणियों के प्रति अत्यन्त दयाभाव, गुणीजनों के प्रति अद्वेष तथा सर्वत्र जहाँ जैसा उचित हो, बिना किसी भेद-भाव के व्यवहार करना, सेवा करना; ये धर्म के बीज हैं ।

175. प्रशंसनीय हैं सत्पुरूष

वपनं धर्मबीजस्य, सत्प्रशंसादि तद्गतम् ।
तच्चिन्ताद्यङ्कुरादि स्यात्, फलसिद्धिस्तु निर्वृत्तिः ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 899]
एवं [भाग 4 पृ. 2731]
— *धर्मबिन्दु 2/7/47*

सत्पुरुषों की प्रशंसा करना यह धर्म बीज का आरोपण है। धर्मचिन्तन आदि उसके अंकुर समान है और निर्वृत्ति या मोक्ष उसकी फलसिद्धि के समान है।

176. गीतार्थवचनः अमृतरसायण

गीअत्थस्स वयणेणं, विसं हलाहलं पिबे।
अविकप्पो अ भक्खिज्जा, तक्खणे जं समुद्दवे ॥
परमत्थओ विसं नो तं, अमयरसायणं खुतं।
निव्विग्घं जं न तं मारे, मओऽवि अमयस्समो ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 902]
— *गच्छाचारपयन्ना 2/44-45*

गीतार्थ पुरुष के वचन से बुद्धिमान् व्यक्ति तुरन्त मृत्यु के घाट उतारनेवाला हलाहल तालपुट विष भी नि:शंक होकर पी लेता है और वैसा पदार्थ भी खा लेता है, क्योंकि परमार्थत: तो वह जहर, जहर नहीं, परन्तु निर्विघ्नकारी अमृततुल्य रसायन ही होता है। कारण कि वह विषभक्षण करनेवाले को मारता नहीं है और कदाचित् मर जाय तो भी वह अमर ही माना जाता है।

177. साधक-आचरण

णय किंचि अणुन्नायं, पडिसिद्धं वावि जिणवरिंदेहिं।
तित्थगराणं आणा, कज्जे सच्चेण होअव्वं ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 903]
एवं [भाग 7 पृ. 947]
— *निशीथ भाष्य 5248*
— *बृहदावश्यक भाष्य 3330*

जिनेश्वरदेव ने न किसी कार्य की एकान्त अनुज्ञा दी है और न एकान्त निषेध ही किया है। उनकी आज्ञा यही है कि साधक जो भी करे वह सच्चाई—प्रामाणिकता के साथ करे।

178. मोक्ष-साधना

दोसा जेण निरुंभं, – ति जेण खिज्जंति पुव्व कम्माइं ।
सेसो मोक्खोवाओ, रोगावत्थासु समणं वा ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 903]
एवं [भाग 7 पृ. 947]
– ***निशीथ भाष्य 5250***
– ***बृहदावश्यक भाष्य 3331***

जिस किसी भी अनुष्ठान से रागादि दोषों का निरोध होता हो तथा पूर्व संचित कर्म क्षीण होते हों, वे सब अनुष्ठान मोक्ष के साधक हैं। जैसेकि रोग को शमन करनेवाला प्रत्येक अनुष्ठान चिकित्सा के रूप में आरोग्यप्रद है।

179. गुणनाशक

चउहिं ठाणेहिं संते गुणे नासेज्जा ।
तं जहा-कोधेणं, पडिनिवेसेणं,
अकयण्णुताए मिच्छत्ताहि निवेसेणं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 906]
– ***स्थानांग 4/4/4/370***

क्रोध, ईर्ष्या–डाह, अकृतज्ञता और मिथ्या आग्रह – इन चार दुर्गुणों के कारण मनुष्य के विद्यमान गुण भी नष्ट हो जाते हैं।

180. दुर्जन दुष्टता

शाठ्यं (जाड्यं) ह्रीमती गण्यते व्रतरुचौ दम्भः शुचौ कैतवम् ।
शूरे निर्घृणता मुनौ (ऋजौ) विमतिता दैन्यं प्रियाभाषिणि ॥
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे ।
तत्को नाम गुणो भवेत् स विदुषां (गुणिनां) यो दुर्जनैर्नाङ्कितः ?॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 907]
– ***नीतिशतक 54***

दुष्ट लोग लज्जाशील को बुद्धु, व्रत में रुचि रखनेवाले को दम्भी, पवित्र पुरुष को कपटी, शूरवीर को दयाहीन, ऋजु (मुनि) को विपरीत बुद्धि (चुप रहनेवाले को निर्बुद्धि), मधुरभाषी को दीन, तेजस्वी को घमण्डी, सुवक्ता को बड़बड़ानेवाला और धीर गंभीर, शान्त पुरुष को असमर्थ कहते हैं। विद्वानों का या गुणवानों का कौन-सा गुण है, जिसे दुष्टों ने कलंकित न किया हो ?

181. संसार-आवर्त

जे गुणे से आवट्टे, जे आवट्टे से गुणे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 908]

– ***आचारांग 1/1/5/41***

जो विषय है वह आवर्त है और जो आवर्त है वह विषय है ।

182. इन्द्रिय-विषय

जे गुणे से मूलट्ठाणे, जे मूलट्ठाणे से गुणे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 908]
एवं [भाग 6 पृ. 725]

– ***आचारांग 1/2/1/62***

जो गुण अर्थात् विषय है, वह मूल स्थान अर्थात् संसार है और जो मूल स्थान (संसार) है, वह गुण (विषय) है ।

183. जीव का लक्षण

नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 912]

– ***उत्तराध्ययन 28/11***

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग – ये सब जीव के लक्षण हैं ।

184. लक्षण सर्वोत्तम मानवता के

माणुस्सं उत्तमो धम्मो, गुरु नाणाइ संजुओ ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 924]

— *धर्मरत्नप्रकरण 1 अधि. पृ. 40*

महान्-ज्ञानादि गुणों से सम्पन्न व धर्म से युक्त मानवता सर्वोत्तम मानी गयी है।

185. लक्ष्मी-निवास

गुरवो यत्र पूज्यन्ते, यत्र धान्यं सुसंस्कृतम् ।
अदन्त कलहो यत्र, तत्र शक्र ! वसाम्यहम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 936]
— *सूत्रकृतांगसूत्र सटीक 1/3/2*

इन्द्र के प्रति लक्ष्मी की उक्ति है — जहाँ गुरुजनों की पूजा होती है, जहाँ पर धान्य सुसंस्कृत होता है और जहाँ पर दूधमुँहे बच्चे खेलते-कूदते हो अर्थात् जहाँ दन्तकलह नहीं होता है; वहाँ पर मैं निवास करती हूँ।

186. ज्ञानार्थी शिष्य

चित्तण्णु अनुकूलो, सीसो सम्मं सुयं लहइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 936]
— *विशेषावश्यक भाष्य 937*

गुरु के चित्त (अभिप्राय) को समझकर उनके अनुकूल चलनेवाला शिष्य सम्यक् प्रकार से ज्ञान प्राप्त करता है।

187. धन्य अन्तेवासी !

णाणस्स होइ भागी, थिरयरओ दंसणे चरित्ते य ।
धन्ना आवकहाए, गुरुकुलवासं ण मुंचंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 938-940]
— *धर्मबिन्दु 5/3 (1)*
एवं धर्मसंग्रह 5/3[154] पृ. 300

जो शिष्य मृत्यु पर्यन्त गुरु के साथ रहते हैं, वे धन्य पुरुष ज्ञान प्राप्त करते हैं तथा दर्शन व चारित्र में भी पूर्णतः स्थिर होते हैं।

188. पूजा-भक्ति

लज्जा दया संजम बंभचेरं,
कल्लाण भागिस्स विसोहि ठाणं ।

जे मे गुरु सयय मणुसासयंति,
ते हं गुरु सययं पूययामि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 940]
— ***दशवैकालिक 9/1/13***

लज्जा, दया, संयम और ब्रह्मचर्य — ये चारों कल्याणभाजन के लिए विरोधि स्थल है। वह (शिष्य) मानता है कि जो गुरु मुझे इनकी सतत शिक्षा देते हैं; मैं सतत उनकी पूजा-भक्ति करता हूँ।

189. गुरु-भक्ति-स्वरूप

अभ्युत्थानं तदालोकेऽभियानं च तदागमे ।
शिरस्यञ्जलि संश्लेषः स्वयमासन ढौकनम् ॥
आसनाभिग्रहो भक्त्या वन्दना पर्युपासना ।
तद्यानेऽनुगमश्चेति प्रतिपत्तिरियं गुरोः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 943]
— ***योगशास्त्र 125-126***

गुरु को देखते ही खड़े हो जाना, आने पर सामने जाना, दूर से ही मस्तक पर अञ्जलि जोड़ना, बैठने के लिए स्वयं आसन प्रदान करना, गुरु के बैठ जाने के बाद बैठना, भक्तिपूर्वक वंदना और उपासना करना, उनके गमन करने पर कुछ दूर तक अनुगमन करना, यह सब गुरु की भक्ति है।

190. गुर्वाज्ञा भंग

गुरु आणभंगम्मि सव्वेऽणत्था जओ भणितं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 944]
— ***पञ्चाशक सटीक 5 विव.***

जैसाकि कहा गया है — गुर्वाज्ञा भंग करने पर सारे अनर्थ होते हैं अर्थात् गुर्वाज्ञा - भंग करना सारे अनर्थों की जड़ है।

191. दुरातिदूर शिष्य

गुरूमूले वि वसंता, अनुकूला जे न होंति उ गुरूणं ।
एएसि तु पयाणं, दूरं दूरेण ते होंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 944]

— ***आवश्यक निर्युक्ति भाष्य 1287***

जो गुरु के अति निकट रहकर भी उनके अनुकूल नहीं चलता है, वह पास रहकर भी दूरातिदूर है।

192. गुरु साक्षी

गुरु सक्खिओ हु धम्मो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 945]

— ***धर्मसंग्रह 2 अधिकार***

गुरु साक्षी ही धर्म है।

193. गुरु-वचन है औषधि

जो गिण्हइ गुरूवयणं भण्णंतं भावओ विसुद्धमणो ।
ओसहमिव पिज्जं तं, तं तस्स सुहावहं होइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 945]

— ***उपदेशमाला 96***

एवं महानिशीथ 5/12

गुरु द्वारा कहे जानेवाले वचनों को, जो भावपूर्वक प्रसन्नचित्त से ग्रहण करता है वह उसके लिए वैसे ही सुखावह होता है जैसे कि रोगी के औषधि पीने पर वह उसके लिए सुखप्रद होती है।

194. प्रज्ञा

पण्णा समिक्खए धम्मं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 961]

— ***उत्तराध्ययन 23/25***

स्वयं की प्रज्ञा से धर्मतत्त्व की समीक्षा करनी चाहिए।

195. इति वृत्त प्रमाण

मज्झिमा उज्जु पन्ना उ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 961]

— ***उत्तराध्ययन 23/26***

दूसरे तीर्थंकर से लगाकर तेइसवें तीर्थंकर के शासनकाल तक की जनता ऋजु – सरल और प्राज्ञ – बुद्धिशालिनी थी ।

196. एक ऐतिहासिक सत्य

पुरिमा उज्जु जडाउ वक्क जडाय पच्छिमा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 961]

– *उत्तराध्ययन 23/26*

प्रथम तीर्थंकर के युग में जनता सरल और जड़ थी, जबकि अन्तिम तीर्थंकर के युग में जनता वक्र और जड़ है ।

197. धर्म प्रतीक

पच्चयत्थं च लोगस्स नाणविहविगप्पणं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 962]

– *उत्तराध्ययन 23/32*

धर्मों के वेष आदि के नाना विकल्प जनसाधारण के परिचय-पहचान के लिए है ।

198. मन के जीते जीत

एगे जिए जिया पंच, पंचे जिए जिया दस ।
दसहा उ जिणि ताणं, सव्वसत्तू जिणामिहं ॥ ?

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 962]

– *उत्तराध्ययन 23/36*

एक मन को जीत लेने पर पाँचों इन्द्रियों पर विजय हो सकती है और पाँचों इन्द्रियों पर विजय कर लेने के बाद पाँचों प्रमाद और पाँचों अव्रतों पर (दसों पर) विजय पा सकते हैं और इन दसों पर विजय पा लेने के पश्चात् अपने अन्तर की दुनिया के तमाम शत्रुओं पर विजय हो जाती है ।

199. विज्ञान और धर्म

विन्नाणेणं समागम्म, धम्मसाहणमिच्छियं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 962]

– *उत्तराध्ययन 23/31*

विज्ञान (विवेक ज्ञान) से ही धर्म के साधनों का निर्णय होता है।

200. अपराजेय शत्रु

एगऽप्पा अजिए सत्तु ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 963]

— ***उत्तराध्ययन 23/38***

स्वयं की असंयत आत्मा ही स्वयं का एक शत्रु है।

201. स्नेह-पाश

रागद्दोसादओ तिव्वा, नेह पासा भयंकरा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 963]

— ***उत्तराध्ययन 23/43***

तीव्र राग-द्वेष, मोह, धन-धान्य, पुत्र-कलत्र आदि के स्नेह रूपी पाश बड़े भयंकर होते हैं।

202. विषवल्ली

भवतण्हा लया वुत्ता, भीमा भीम फलोदया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 963]

— ***उत्तराध्ययन 23/48***

संसार की तृष्णा भयंकर फल देनेवाली विष-बेल है।

203. कषायाग्नि

कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुयसील तवो जलं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 964]

— ***उत्तराध्ययन 23/53***

कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ) को अग्नि कहा गया है। उसे बुझाने के लिए श्रुत (ज्ञान), शील, सदाचार और तप जल है।

204. ज्ञानांकुश

पहावंतं निगिण्हामि, सुयरस्सी समाहियं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 964]

— ***उत्तराध्ययन 23/56***

उन्मार्ग की ओर जाते हुए उस मन रूपी दुष्ट घोड़े को श्रुतज्ञान रूपी लगाम से बाँधकर मैं वश कर लेता हूँ।

205. मन-अश्व

मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई ।
तं सम्मं निगिण्हामि, धम्म सिक्खाए कंथगं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 964]

— ***उत्तराध्ययन 23/58***

यह मन बड़ा ही साहसिक, भयंकर दुष्ट घोड़ा है, जो बड़ी तेजी के साथ दौड़ता रहता है। मैं धर्म शिक्षा रूप लगाम से उस घोड़े को अच्छी तरह वश में किए रहता हूँ।

206. सम्यक् श्रद्धालु

सम्मग्गं तु जिणक्खायं, एस मग्गे हि उत्तमे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 964]

— ***उत्तराध्ययन 23/63***

जिनेश्वरों ने जो कहा है, वही सर्वोत्तम मार्ग है; ऐसा जिनका अटल विश्वास है, वही सम्यक् श्रद्धावान् है।

207. मिथ्यादृष्टि [असत्य प्ररूपक]

कुप्पवयणपासंडी सव्वे उम्मग्ग पट्ठिया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 964]

— ***उत्तराध्ययन 23/63***

'कु' अर्थात् असत्य प्ररूपणा करनेवाले — कुप्रवचनवाले सभी पाखण्डी (मिथ्यात्वी) उन्मार्ग में स्थित हैं।

208. धर्म उत्तम शरण

जरा मरण वेगेणं बुज्झमाणाण पाणिणं ।
धम्मो दीवो पइट्ठाय, गई सरणमुत्तमं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 965]

— ***उत्तराध्ययन 23/68***

— *उत्तराध्ययन 1/31 एवं दशवैकालिक 5/2/4*

जिस काल में जो कार्य करने का हो, उस काल-समय में वही कार्य करना चाहिए अथवा समय पर समय का उपयोग (समयोचित कर्तव्य) करना चाहिए ।

217. साध्वाचार

कालेण निक्खमे भिक्खू कालेण य पडिक्कमे ।
अकालं च विवज्जेत्ता कालेकालं समायरे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 970]
एवं [भागं 6 पृ. 1165]

— *उत्तराध्ययन 1/31*

श्रमण भोजन बनने के समय बाहर जाए एवं समय से वापस आ जाए । बेसमय का त्याग करके सारा काम यथासमय करे ।

218. अलाभ परिषह

अलाभोत्ति न सोएज्जा, तवोत्ति अहियासए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 971]

— *दशवैकालिक 5/2/6*

भिक्षु को यदि कभी मर्यादानुकूल शुद्ध भिक्षा न मिले, तो खेद न करे, अपितु यह मानकर अलाभ परिषह को सहन करे कि अच्छा हुआ; आज सहज ही तप का अवसर मिल गया ।

219. पुरुषार्थ-प्रेरणा

कुज्जा पुरिसकारियं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 971]

— *दशवैकालिक 5/2/6*

पुरुषार्थ करो ।

220. समयानुकूल आहार

मोक्खपसाहण हेऊ, णाणाति तप्पसाहणो देही ।
देहट्ठा आहारो, तेण तु कालो अणुणातो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 973]

— ***निशीथ भाष्य 4159***

— ***बृहदावश्यक भाष्य 5281***

ज्ञानादि मोक्ष के साधन हैं और ज्ञान आदि का साधन देह है, देह का साधन आहार है। अत: साधक को समयानुकूल आहार की आज्ञा दी गई है।

221. निष्पक्ष भिक्षाचरी

समुदाणं चरे भिक्खू, कुलमुच्चावयं सया ।
नीयं कुलमइक्कम्मं, ऊसढं नाभिधारए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 980]

— ***दशवैकालिक 5/2/25***

साधु सदा धनवान् और गरीब घरों की (समुदान) भिक्षा करें। वह निर्धन कुल का घर समझ कर, उसे लाँघकर धनवान् के घर न जाए।

222. पंडित–अखिन्न

न विसीएज्ज पंडिए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 981]

— ***दशवैकालिक 5/2/26***

पण्डित जन किसी भी स्थिति में विषाद न करें।

223. आत्मविद् साधक

अदीणो वित्ति मेसेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 981]

— ***दशवैकालिक 5/2/26***

आत्मविद् साधक अदीन भाव से जीवन-यात्रा करता रहे। किसी भी स्थिति में मन में खिन्नता न आने दे।

224. अदाता पर अकुपित

अदेंतस्स न कुप्पेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 981]

— ***दशवैकालिक 5/2/28***

यदि दाता न दे, तथापि उस पर कुपित न हो ।

225. भिक्षाचरी में न दैन्य न कोप

बहुं परघरे अत्थि, विविहं खाइम साइमं ।
न तत्थ पंडिओ कुप्पे, इच्छा देज्ज परो न वा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 981]
— ***दशवैकालिक 5/2/27***

गृहस्थ के घर में अनेक प्रकार के बहुत से खाद्य-स्वाद्य पदार्थ होते हैं । यदि गृहस्थ मुनि को न दें तो भी वह बुद्धिमान् साधु उस पर कोप न करे किन्तु ऐसा विचार करे कि वह गृहस्थ है, दे या न दे ! यह उसकी इच्छा पर निर्भर है ।

226. भिक्षाचरी संहिता

न चरेज्जवासे वासंते, महियाए पडंतिए ।
महावाए व वायंते, तिरिच्छ संपाइमेसु वा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 982]
— ***दशवैकालिक 5/1/8***

बारिस हो रही हो, कुहरा छा रहा हो, आँधी चल रही हो और मार्ग में जीव-जन्तु उड़ रहे हों; ऐसी स्थिति में साधु भिक्षा के लिए अपने स्थान से बाहर न निकले ।

227. कलह से दूर

कलहं जुद्धं, दूरओ परिवज्जए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 982]
— ***दशवैकालिक 5/1/12***

जहाँ कलह हो रहा हो, युद्ध मच रहा हो, वहाँ साधु-पुरुष को नहीं जाना चाहिए बल्कि दूर से ही उसे छोड़ देना चाहिए ।

228. ब्रह्मचारी-गमनागमन निषेध

न चरेज्ज वेस सामंते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 982]
— ***दशवैकालिक 5/1/9***

ब्रह्मचारी वेश्यालयों के निकट होकर आवागमन न करे।

229. शंकास्पद त्याग

संकट्ठाणं विवज्जए।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 983]

— ***दशवैकालिक 5/1/15***

शंका के स्थानों को छोड़ दो।

230. देखो, चलो !

दवदवस्स न गच्छेज्जा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 983]

— ***दशवैकालिक 5/1/14***

मार्ग में जल्दी - जल्दी ताबड़-तोबड़ नहीं चलना चाहिए।

231. चलो ! हँसते नहीं !

हंसतो नाभिगच्छेज्जा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 983]

— ***दशवैकालिक 5/1/14***

रास्ते में हँसते हुए नहीं चलना चाहिए।

232. क्लेश से दूर

संकिलेसकरं ठाणं, दूरओ परिवज्जए।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 983]

— ***दशवैकालिक 5/1/16***

जिस स्थान पर क्लेश की संभावना हो, उस स्थान से दूर रहना चाहिए।

233. कठोर वचन-त्याग

नो व णं फरूसं वदेज्जा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 986]

— ***आचारांग 2/1/1/6***

साधक को चाहिए कि वह कठोर भाषा का प्रयोग नहीं करे।

234. निर्दोष ग्राह्य

पडिगाहेज्ज कप्पियं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 989]

— ***दशवैकालिक 5/1/27***

निर्दोष वस्तु ग्रहण करो !

235. अकल्प्य

अकप्पियं न गेण्हेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 989]

— ***दशवैकालिक 5/1/27***

सदोष (अकल्प्य) वस्तु ग्रहण मत करो ।

236. परिहरुं कुवच कठोर

नो य णं फरूसं वए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 990]

— ***दशवैकालिक 5/2/29***

कठोर वचन मत बोलो ।

237. अनपेक्षा

जे न वंदे न से कुप्पे वंदिओ न समुक्कसे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 990]

— ***दशवैकालिक 5/2/30***

श्रमण वन्दन-स्तुति नहीं करने पर क्रोध न करे और करने पर अहंभाव न लाए ।

238. वंदन समय याचना वर्जन

वंदमाणं न जाएज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 990]

— ***दशवैकालिक 5/2/29***

कोई वन्दन कर रहा हो तो श्रमण उससे किसी प्रकार की याचना न करें ।

239. अन्तर्मन

छंदं से पडिलेहए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 991]
— *दशवैकालिक 5/1/52*

व्यक्ति के अन्तर्मन को परखना चाहिए ।

240. त्रिधा भिक्षा

त्रिधा भिक्षाऽपि तत्राद्या, सर्वसंपत्करी मता ।
द्वितीया पौरूषघ्नी स्याद्, वृत्ति भिक्षा तथान्तिमा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1006]
— *हितोपदेश 2/20*

भिक्षा तीन प्रकार की होती हैं — (१) सर्वसंपत्करीभिक्षा-साधु को निर्दोष वस्तु देना । (२) पौरुषघ्नी भिक्षा — साधु को सदोष वस्तु देना और (३) वृत्ति भिक्षा — अन्धे, बहरे आदि को कुछ देना ।

241. दुर्लभ अंग

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणिह जंतुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1051-1052]
— *उत्तराध्ययन 3/1*

इस संसार में प्राणियों के लिए चार परम अंग (उत्तम संयोग) अत्यन्त दुर्लभ हैं — १. मनुष्यत्व २. धर्म-श्रवण ३. सम्यक् श्रद्धा और ४. संयम में पुरुषार्थ ।

242. कर्मवाद

समावन्नाण संसारे, नाणा गोत्तासु जाइसु ।
कम्मा नाणा विहाकट्टु, पुढो विस्संभिया पया ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1051]
— *उत्तराध्ययन 3/2*

संसारी जीव विविध प्रकार के कर्मों का अर्जन कर विविध नाम एवं गोत्र वाली जातियों में तथा संसार में भिन्न भिन्न स्वरूप का स्पर्श कर सब जगह उत्पन्न हो जाता है।

243. मनुष्य भव-प्राप्ति

जीवा सोहिमणुप्पत्ता, आययंति मणुस्सयं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1052]

— ***उत्तराध्ययन 3/7***

कर्मक्षय रूप शुद्धि को प्राप्त हुए जीव मनुष्य-जन्म प्राप्त करते हैं।

244. कर्म-योनि

एगया खत्तिओ होइ, तओ चंडाल बोक्कसो ।
तओ कीड पयं गोय, तओ कुंथूपिवीलिया ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1052]

— ***उत्तराध्ययन 3/4***

यह जीव कभी क्षत्रिय, कभी चांडाल, कभी वर्णसंकर जाति का होता है। तत्पश्चात् कभी पतंग, कभी कीट, किसी समय कुंथु और कभी चींटी भी बनता है।

245. कृतकर्मभोग

एगयादेव लोगेसु, नरएसुवि एगया ।
एगया आसुरं कायं, आहा कम्मेहिं गच्छई ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1052]

— ***उत्तराध्ययन 3/3***

यह जीवन अपने कृत कर्मों के अनुसार कभी देवलोक में, कभी नरक में तो कभी असुरों के निकाय में उत्पन्न होता है।

246. कर्मवेदना

कम्मसंगेहिं संमूढा, दुक्खिया बहुवेयणा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1052]

— ***उत्तराध्ययन 3/6***

जीव कर्मों के संग से मूढ़ बनकर अत्यन्त वेदना तथा दु:ख पाते हैं।

247. दुर्लभ श्रद्धा

सद्धा परम दुल्लहा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1053]

— ***उत्तराध्ययन 3/9***

धर्म में श्रद्धा होना परम दुर्लभ है ।

248. मोक्ष

निव्वाणं परमं जाइ, घयसित्ते वपावए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1053]

— ***उत्तराध्ययन 3/12***

घृत से अभिसिंचित अग्नि जिसप्रकार पूर्ण प्रकाश को पाती है, उसीप्रकार सरल एवं शुद्ध हृदय साधक ही पूर्ण निर्वाण-मोक्ष को पाता है ।

249. धर्माचरण-दुर्लभ

वीरियं पुण दुल्लहं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1053]

— ***उत्तराध्ययन 3/10***

धर्म का आचरण करना और भी दुर्लभ है ।

250. संयम में पुरूषार्थ कठिन

सुइं च लद्धुं सद्धं च, वीरियं पुण दुल्लहं ।
बहवे रोयमाणावि, नो यणं पडिवज्जई ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1053]

— ***उत्तराध्ययन 3/10***

धर्म श्रवण और श्रद्धा प्राप्त होने पर भी संयम मार्ग में पुरुषार्थ प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है । बहुत से लोग श्रद्धा सम्पन्न होते हुए भी संयम मार्ग में प्रवृत्त नहीं होते ।

251. श्रद्धा-परिभ्रष्ट

सोच्चा णेयाउयं मग्गं बहवे परिभस्सई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1053]

— ***उत्तराध्ययन 3/9***

बहुत से लोग न्याय युक्त कल्याणमार्ग की बात सुनकर भी श्रद्धा से परिभ्रष्ट हो जाते हैं ।

252. धर्मश्रवण अति दुर्लभ

माणुस्सं विग्गहं लद्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा ।
जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खंतिमहिंसयं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1053]
— *उत्तराध्ययन 3/8*

मानव देह पाकर भी सद्धर्म का श्रवण अति-दुर्लभ है, जिसे सुनकर मनुष्य तप, क्षमा और अहिंसा को स्वीकार करते हैं ।

253. दुर्लभ क्या ?

सुई धम्मस्स दुल्लहा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1053]
— *उत्तराध्ययन 3/8*

धर्म श्रवण बहुत दुर्लभ है ।

254. यश – संचय

जसं संचिण खंतिए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1054]
— *उत्तराध्ययन 3/13*

क्षमा से यश का संचय करो ।

255. कर्म-हेतु

विगिंच कम्मणो हेउं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1054]
— *उत्तराध्ययन 3/13*

कर्म के हेतु को छोड़ ।

256. जिन एवं अरिहंत

जिय कोह माण माया, जिय लोहा तेण ते जिणा हुंति
अरिणो हंता रयं हंता, अरिहंता तेण वुच्चंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1057]

— ***आवश्यक निर्युक्ति 2/1089***

क्रोध, मान, माया और लोभ पर विजय पा लेने के कारण 'जिन' कहलाते हैं। कर्म रूपी शत्रुओं का तथा कर्म रूपी रज का हनन करने के कारण 'अरिहंत' कहे जाते हैं।

257. परमात्मा से याचना

आरूग्ग बोहिलाभं समाहिलाभं
समाहिवरमुत्तमं च मे दितुं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1058]

— ***आवश्यक निर्युक्ति 2/1107***

मुझे आरोग्य, सम्यक्त्व तथा समाधि को प्रदान करो।

258. रूप-आसक्ति

चक्खिदिय दुद्दंत – त्तणस्सं अह एत्तिओ भवति दोसो ।
जं जलणम्मि जलंते, पडति पयंगो अबुद्धिओ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1106]

— ***ज्ञाताधर्मकथा 1/17/36***

चक्षुरिन्द्रिय की आसक्ति का इतना बुरा परिणाम होता है कि मूर्ख पतंगा जलती हुई आग में गिरकर मर जाता है।

259. मोक्ष का मूल

नाण किरियाहिं मोक्खो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1126]

— ***विशेषावश्यक भाष्य 3***

ज्ञान और क्रिया से ही मुक्ति मिलती है।

260. जलयान और हवा

वाएण विणा पोओ, न चएइ महण्णवं तरिउं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1127]

— ***आवश्यक निर्युक्ति 1/95***

अच्छे से अच्छा जलयान भी हवा के बिना महासागर को पार नहीं कर सकता।

261. तप, संयम

निउणोऽवि जीव पोओ, तव संजम मारूअ विहूणो ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 1127]

— आवश्यक निर्युक्ति 1/96

शास्त्रज्ञान में कुशल साधक भी तप-संयम रूप पवन के बिना संसार-सागर को तैर नहीं सकता।

262. निवृत्ति-प्रवृत्ति

असंजमे नियत्ति च, संजमे य पवत्तणं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 1128]

— उत्तराध्ययन 31/2

असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति करनी चाहिए।

263. मोक्ष नहीं !

अगुणिस्स नत्थि मोक्खो ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 1128]

— उत्तराध्ययन 28/30

अगुणी (दर्शन-ज्ञानादि से रहित) व्यक्ति की मुक्ति नहीं होती।

264. मोक्ष बिन निर्वाण नहीं

नत्थि अमुक्कस्स निव्वाणं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 1128]

— उत्तराध्ययन 28/30

मोक्ष के बिना निर्वाण नहीं होता।

265. ज्ञान बिन चारित्र नहीं !

नाणेण विणा न होंति चरण गुणा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 1128]

— *उत्तराध्ययन 28/30*

सम्यग्ज्ञान के बिना जीवन में चारित्र नहीं हो सकता ।

266. दर्शन बिन ज्ञान नहीं !

नादंसणिस्स नाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1128]

— *उत्तराध्ययन 28/30*

सम्यग्दर्शन से रहित को सम्यक्ज्ञान नहीं होता है ।

267. पाप कर्म प्रवर्तक

राग-दोसे च दो पावे, पावकम्म – पवत्तणे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1128]

— *उत्तराध्ययन 31/3*

राग-द्वेष ये दोनों पाप कर्मों के प्रवर्तक होने से पाप रूप है ।

268. मुक्ति – मूल

तस्मात् चारित्रमेव प्रधानं मुक्ति कारणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1143]

— *आवश्यकबृहद्वृत्ति 3 अध्ययन*

चारित्र ही मुक्ति का प्रधान कारण है ।

269. त्रिरत्न

नाणेण होइ करणं, करणं नाणेण फासियं होइ ।
दुण्हंपि समाओगे, होइ विसोही चरित्तस्स ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1145]

— *दसपयन्ना 79*

ज्ञान से क्रिया होती है, क्रिया से ज्ञान का स्पर्श होता है और दोनों के समाविष्ट होने पर चारित्र की विशुद्धि होती है ।

270. शैलेशी भाव प्राप्ति

चरित्त संपन्नयाएणं सेलेसी भावं जणयइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1150]

— ***उत्तराध्ययन 29/63***

चारित्र की संपन्नता से जीव शैलेशी-भाव अर्थात् चौदहवें गुणस्थान की अड़ोल स्थिति को प्राप्त करता है ।

271. निरवद्य वक्ता

कुसलवति उदीरेंतो, ज वइ गुत्तोवि समिओवि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1150]

— ***निशीथ भाष्य 37***

— ***बृहदावश्यक भाष्य 4451***

कुशल वचन (निरवद्य वचन) बोलनेवाला वचन समिति का भी पालन करता है और वचन गुप्ति का भी ।

272. त्यागी कौन नहीं ?

अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइ त्ति वुच्चइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1167]

— ***दशवैकालिक 2/2***

जो पराधीनता के कारण विषयों का उपभोग नहीं कर पाते, उन्हें त्यागी नहीं कहा जा सकता ।

273. सच्चा त्यागी

जे य कंते पिए भोए, लद्धे विप्पिट्ठी कुव्वइ ।
साहीणे चयई भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1167]

— ***दशवैकालिक 2/3***

जो मनोहर और प्रिय भोगों के उपलब्ध होने पर भी स्वाधीनतापूर्वक उन्हें पीठ दिखा देता है, वस्तुत: वही त्यागी है ।

274. अनन्त गुण दीप्त साधु

वस्तुतस्तु गुणैः पूर्णमनन्तैर्भासते स्वतः ।
रूपं त्यक्तात्मनः साधोर्निरभ्रस्य विधोरिव ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1171]

— *ज्ञानसार 8/8*

बादलरहित चन्द्र की तरह परम त्यागी साधु अथवा योगी का स्वरूप — समृद्ध और अनन्त गुणों से देदीप्यमान होता है।

275. समता-पत्नी

कान्ता मे समतैवैका ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1171]

— *ज्ञानसार 8/3*

'समता' ही एक मेरी पत्नी है।

276. मोह क्षीण — कर्म क्षीण

सुक्क मूले जहा रूक्खे, सिच्चमाणे ण रोहति ।
एवं कम्माण रोहंति, मोहणिज्जे खयं गए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1184]

— *दशाश्रुतस्कंध 5/14*

जिस वृक्ष की जड़ सूख गई हो, उसे कितना ही सींचिए; वह हरा-भरा नहीं होता, मोह के क्षीण होने पर कर्म भी फिर हरे-भरे नहीं होते।

277. कर्म बीज दग्ध

जहा दड्ढाण बीयाण, ण जायंति पुणंकुरा ।
कम्म बीएसु दड्ढेसु न जायंति भवंकुरा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1184]

— *दशाश्रुतस्कंध 5/15*

बीज जब जल जाता है तो उससे नवीन अंकुर प्रस्फुटित नहीं हो सकता। ऐसे ही कर्म-बीज के जल जाने पर उससे जन्म-मरण रूप अंकुर प्रस्फुटित नहीं हो सकता।

278. मनदर्पण, निर्वाण

ओय चित्त समादाय, झाणं समणुपासति ।
धम्मे ठिओ अविमणो, निव्वाणमभिगच्छति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1184]

— *दशाश्रुतस्कंध 5/1*

चित्त वृत्ति निर्मल होने पर ही ध्यान की सही स्थिति प्राप्त होती है। जो बिना किसी विमनस्कता के निर्मल मन से धर्म में स्थित हैं, वह निर्वाण को प्राप्त करता है।

279. दर्शनातुर देव

अप्पाहारस्स दंतस्स, देवा दंसेति ताइणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1184]

— *दशाश्रुतस्कंध 5/4*

जो साधक अल्पाहारी है, इन्द्रियों का विजेता है, सभी प्राणियों के प्रति रक्षा की भावना रखता है, उसके दर्शन के लिए देव भी आतुर रहते हैं।

280. मोह–क्षय

धूम हीणो जहा अग्गीं खिज्जते से निरिंधणे ।
एवं कम्माणि खीयते, मोहणिज्जे खय गए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1184]

— *दशाश्रुतस्कंध 5/13*

जिसप्रकार अग्नि इंधन के अभाव में धूमरहित होकर क्रमश: विनाश को प्राप्त होती है उसीप्रकार मोहकर्म के क्षय होने पर अवशेष कर्म भी नष्ट हो जाते हैं।

281. मोह-क्षय सर्वक्षय

सेणावतिम्मिणि हते, जहा सेणा पणस्सति ।
एवं कम्मा पणस्संति, मोहणिज्जे खयं गए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1184]

— *दशाश्रुतस्कंध 5/12*

जिसप्रकार संग्राम में सेनापति के मर जाने पर सारी सेना भाग जाती हैं उसीप्रकार एक मोहनीय कर्म के क्षय होने पर सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं।

282. निर्मल चित्त

ण इमं चित्त समादाय, भुज्जो लोयंसि जायति ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 1184]

– *दशाश्रुतस्कंध 5/2*

निर्मल चित्तवाला साधक संसार में पुन: जन्म नहीं लेता ।

283. देवाधिदेव वीतराग

प्रशमरस निमग्नं दृष्टि युग्मं प्रसन्नं,
वदन कमलमङ्कः कामिनी संग शून्यः ।
कर युगमपि यत्ते शस्त्र सम्बन्ध वन्ध्यं,
तदसि जगति देवो वीतरागस्त्वमेव ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 1209]

– *श्री पर्वकथा संचय पृ. 149*

जिनके नयन प्रशमरस निमग्न हैं। जिनकी आँखों में कामक्रोधादि नहीं हैं, अत: जो प्रसन्न दृष्टि हैं। जिनका वदन कमल और अंक कामिनी के संग से रहित है अर्थात् जिन्होंने कन्दर्प के दर्प का दलन कर दिया है। जिनके दोनों हाथ शस्त्र से रहित है। जो अभय है और अभय के दाता है, ऐसे देव इस दुनिया में एक वीतराग ही हैं।

284. आत्म-कर्म

जीवाणं चेयकडा कम्मा कज्जंति,
नो अचेयकडा कम्मा कज्जंति ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 1336]

– *भगवतीसूत्र 16/2/17 (1)*

आत्माओं के कर्म चेतनाकृत होते हैं, अचेतनाकृत नहीं ।

285. जीवात्मा-आधार

जीवाहारो भण्णइ आयारो ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 3 पृ. 1343]

– *दशवैकालिक निर्युक्ति 215*

तप-संयम रूप आचार का मूल आधार आत्मा में श्रद्धा ही है।
(जीवात्मा का मूलाधार आचार ही है।)

286. भयंकर वृद्धावस्था

पंथसमा नत्थि जरा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1359]

— ***सुभाषित सूक्त संग्रह 37/4***

पंथ के समान कोई वृद्धावस्था नहीं है।

287. पराजय

दारिद्द समो पराभवो (परिभवो) नत्थि।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1359]

— ***सुभाषित सूक्त संग्रह 37/4***

दरिद्रता से बढ़कर कोई पराजय नहीं है।

288. मृत्यु-भय

मरण समं नत्थि दुःखं (भयं)।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1359]

— ***सुभाषित सूक्त संग्रह 37/4***

मृत्यु से बढ़कर कोई भय नहीं है।

289. क्षुधा – वेदना

खुहा (छुआ) समा वेयणा नत्थि।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 3 पृ. 1359]

— ***सुभाषित सूक्त संग्रह 37/4***

भूख से बढ़कर कोई वेदना नहीं है।

प्रथम
परिशिष्ट
अकारादि अनुक्रमणिका

अकारादि अनुक्रमणिका

अ

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
279.	अप्पाहारस्स दंतस्स ।	3	1184
	आ		
82.	आयाणे अज्जो ! सामाइए ।	3	497
147.	आयरियं विदित्ताणं, सव्वदुक्खा विमुच्चई ।	3	751
257.	आरुग्गबोहिलाभं समाहिलाभं ।	3	1058
	इ		
130.	इणमेव खणं वियाणिया ।	3	703
	उ		
9.	उण्णतमाणे य णरे ।	3	8
22.	उपदेशो न दातव्यो ।	3	222
66.	उवसमेण हणे कोहं ।	3	399
213.	उग्गओ खीण संसारो ।	3	965
	ए		
2.	एगस्स गती य आगती ।	3	2
3.	एगो सयं पच्चणुहोति दुक्खम् ।	3	2
4.	एकः प्रकुरुते कर्म ।	3	2
12.	एगत्तमेव अभिपत्थएज्जा ।	3	13
24.	एवं भाव विसोहीए णेव्वाण मभिगच्छती ।	3	331
25.	एवं तु समणा एगे ।	3	332
114.	एगंत दुक्खे जरिते व लोए ।	3	610
198.	एगे जिए जिया पंच ।	3	962
200.	एगऽप्पा अजिए सत्तु ।	3	963
244.	एगया खत्तिओ होइ ।	3	1052
245.	एगयादेव लोगेसु ।	3	1052
	ओ		
278.	ओय चित्त समादाय ।	3	1184
	अं		
20.	अंधो कहिं कत्थ य देसियव्वं ।	3	222

क्रि

93.	क्रिया विरहितं हन्त !	3	551
97.	क्रियैव फलदा पुंसां ।	3	554

ख

132.	खमावणायाए णं पल्हायण भावं जणयइ ।	3	715
289.	खुहा (छुआ) समा वेयणा नत्थि ।	3	1359

खं

129.	खंतीएणं परीसहे जिणइ ।	3	692

ग

81.	गरहा संजमे, नो अगरहा संजमे ।	3	497
115.	गब्भाई मिज्जंति बुयाऽबुयाणा ।	3	610

गी

176.	गीअत्थस्स वयणेणं, विसं हलाहलं पिबे ।	3	902

गु

94.	गुणवृद्धयै ततः कुयर्ति् क्रियामस्खलनाय वा ।	3	552
185.	गुरवो यत्र पूज्यन्ते ।	3	936
190.	गुरु आणभंगम्मि सव्वे ।	3	944
191.	गुरुमूले वि वसंता ।	3	944
192.	गुरु सक्खिओ हु धम्मो ।	3	945

च

116.	चयंति ते आउक्खए पलीणा ।	3	610
165.	चउवीसत्थएणं दंसणविसोहिं जणयइ ।	3	849
179.	चउहिं ठाणेहिं संते गुणे नासेज्जा ।	3	906
241.	चत्तारि परमंगाणि ।	3	1051-1052
258.	चक्खिदिय दुद्दंत ।	3	1106
270.	चरित्त संपन्नयाएणं सेलेसी भावं जणयइ ।	3	1150

चि

75.	चित्तस्सेगग्गया हवइ झाणं ।	3	407
186.	चितण्णु अनुकूलो, सीसो सम्मं सुयं लहइ ।	3	936

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	छं		
239.	छंदं से पडिलेहए ।	3	991
	छिं		
143.	छिंद गिद्धिं सिणेहं च ।	3	751
	ज		
26.	जहा आसाविणि णावं ।	3	332
39.	जहा लाभो तहा लोभो ।	3	387
48.	जगनिस्सिएहिं भूसहिं ।	3	390
84.	जह नाम महुर सलिलं ।	3	518
86.	जम्हा विणयइ कम्मं ।	3	523
87.	जह दूओ रायाणं ।	3	525
172.	जह भमरमहुयरिगणा ।	3	877
208.	जरामरणवेगेणं बुड्ढमाणाण पाणिणं ।	3	965
254.	जसं संचिण खंतिए ।	3	1054
277.	जहा दड्ढाण बीयाण ।	3	1184
	जा		
50.	जायाए घासमेसेज्जा ।	3	390
135.	जावन्तिऽविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्ख सम्भवा ।	3	750
158.	जावइया नयवाया ।	3	794
209.	जा उ अस्साविणी नावा ।	3	965
	जि		
256.	जिय कोह माण माया ।	3	1057
243.	जीवा सोहि मणुप्पत्ता, आययंति मणुस्सयं ।	3	1052
284.	जीवाणं चेयकडा कम्मा कज्जंति ।	3	1336
285.	जीवाहारो भण्णइ आयारो ।	3	1343
	जे		
11.	जे एगं णामे से बहुं णामे ।	3	11
148.	जे केइ सरीर सत्ता ।	3	751
164.	जे मोहदंसी से गब्भदंसी ।	3	840
181.	जे गुणे से आवट्टे, जे आवट्टे से गुणे ।	3	908

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	ना		
146.	नाइएज्ज तणामवि ।	3	751
183.	नाणं च दंसणं चेव ।	3	912
259.	नाण किरियाहिं मोक्खो ।	3	1126
265.	नाणेण विणा न होंति चरण गुणा ।	3	1128
266.	नादंसणिस्स नाणं ।	3	1128
269.	नाणेण होइ करणं ।	3	1145
	नि		
248.	निव्वाणं परमं जाइ ।	3	1053
261.	निउणोऽवि जीव पोओ ।	3	1127
	नो		
233.	नो व णं फरूसं वदेज्जा ।	3	986
236.	नो य णं फरुसं वए ।	3	990
	प		
99.	पढमं नाणं तओ दया ।	3	556
144.	पच्चमाणस्स कम्मेहिं ।	3	751
151.	पक्खी पत्तं समादाय, निरवेक्खो परिव्वए ।	3	752
194.	पण्णा समिक्खए धम्मं ।	3	961
197.	पच्चयत्थं च लोगस्स नाणविहविगप्पणं ।	3	962
204.	पहावंतं निगिण्हामि, सुयरस्सी समाहियं ।	3	964
234.	पडिगाहेज्ज कप्पियं ।	3	989
	पा		
30.	पास ! लोए महब्भय ।	3	342
76.	पावं छिंदइ जम्हा पायच्छित्तंति भण्णइ तेणं ।	3	413
	पु		
150.	पुव्वकम्मखयट्ठाए, इमं देहं समुद्धरे ।	3	752
166.	पुरिसम्मि दुव्विणीए ।	3	855
196.	पुरिमा उज्जु जडाउ वक्क जडाय पच्छिमा ।	3	961

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	पं		
286.	पंथसमा नत्थि जरा ।	3	1359
	प्र		
37.	प्रथम वयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः ।	3	354
283.	प्रशमरस निमग्नं दृष्टि युग्मं प्रसन्नं ।	3	1209
	ब		
34.	बहुदुक्खा हु जंतवो ।	3	342
53.	बहु कम्मलेवलिताणं ।	3	391
111.	बहुकूरकम्मे, जं कुव्वती मिज्जति तेण बाले ।	3	608
154.	बहिया उड्ढमादाय नाव कंखे कयाइवि ।	3	752
225.	बहुं परघरे अत्थि, विविहं खाइम साइमं ।	3	981
	बा		
46.	बाले य मंदिए मूढे, वज्झई मच्छिया खेलम्मि ।	3	389
90.	बाह्य भावं पुरस्कृत्य ।	3	551
169.	बाला य बुड्ढा य अजंगमाय ।	3	857
	बु		
108.	बुद्धा हुते अंतकडा भवंति ।	3	558
	बो		
15.	बोही य से नो सुलभा पुणो पुणो ।	3	136
	भ		
142.	भणंता अकरेन्ता य ।	3	751
145.	भय - वेराओ उवरए ।	3	751
202.	भव तण्हा लया वुत्ता, भीमा भीम फलोदया ।	3	963
	भा		
122.	भारस्स जाता मुणि भुञ्जएज्जा ।	3	612
	म		
149.	मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ।	3	751
167.	मद्दव करणं नाणं तेणे व उ जे मंदं ।	3	855
168.	मद्दव करणं नाणं ।	3	855

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
195.	मज्झिमा उज्जु पन्ना उ।	3	961
205.	मणो साहसिओ भीमो।	3	964
288.	मरण समं नत्थि दुक्खं (भयं)।	3	1359
	मा		
61.	माणो विणय नासणो।	3	399
62.	माया मित्ताणि नासेइ।	3	399
64.	माणं मद्दवया जिणे।	3	399
65.	मायं चऽज्ज भावेण।	3	399
139.	मायापियाण्हुसा भाया।	3	750
155.	मायन्ने असण-पाणस्स।	3	755
184.	माणुस्सं उत्तमो धम्मो।	3	934
252.	माणुस्सं विग्गहं लद्धुं।	3	1053
	मि		
13.	मियं कालेण भक्खए।	3	69
	मे		
103.	मेधाविणो लोभ भयावतीता।	3	557
137.	मेत्तिं भूएसु कप्पए।	3	750
	मो		
220.	मोक्खपसाहण हेऊ।	3	973
	मं		
45.	मंदा निरयं गच्छंति, बाला पावियाहिं दिट्ठीहिं।	3	389
	र		
51.	रस गिद्धे न सिया भिक्खए।	3	390
160.	रज्जं विलुत्त सारं, जह जह गच्छोवि निस्सारो।	3	806
	रा		
201.	रागद्दोसादओ तिव्वा, नेह पासा भयंकरा।	3	963
267.	राग-दोसे च दो पावे, पावकम्म-पवत्तणे।	3	1128
	ल		
113.	लवण विहुणा य रसा।	3	610

सूक्ति क्रमांक	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
276.	सुक्कमूले जहा रुक्खे ।	3	1184

से

57.	सेलथंभ समाणं माणं अणुपविट्ठे जीवे ।	3	396
215.	से गामे वा नगरे वा ।	3	968
281.	सेणावतिम्मिणिहते ।	3	1184

सो

171.	सोऊण ऊ गिलाणं ।	3	877
251.	सोच्चा णेया उयं मग्गं बहवे परिभस्सई ।	3	1053

सं

10.	संबाहा बहवे भुज्जो भुज्जो ।	3	8
16.	संभिन्नवित्तस्स य हेट्ठओ गई ।	3	136
32.	संति पाणा अंधा तमंसि वियाहिता ।	3	342
80.	संरंभ समारंभे, आरंभे य तहेव य ।	3	449
102.	संतो सिणो णोपकरेंति पावं ।	3	557
110.	संसारमावन्न परं परंते ।	3	608
127.	संगाम सीसेव परं दमेज्जा ।	3	613
152.	संनिहिं च न कुव्वेज्जा, लेवमायाए संजए ।	3	752
229.	संकट्ठाणं विवज्जए ।	3	983
232.	संकिलेसकरं ठाणं ।	3	983

स्व

91.	स्वानुकूलां क्रियां काले ।	3	551

शा

96.	शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः ।	3	554
180.	शाठ्यं (जाड्यं) ह्रीमती गण्यते व्रतरुचौ ।	3	907
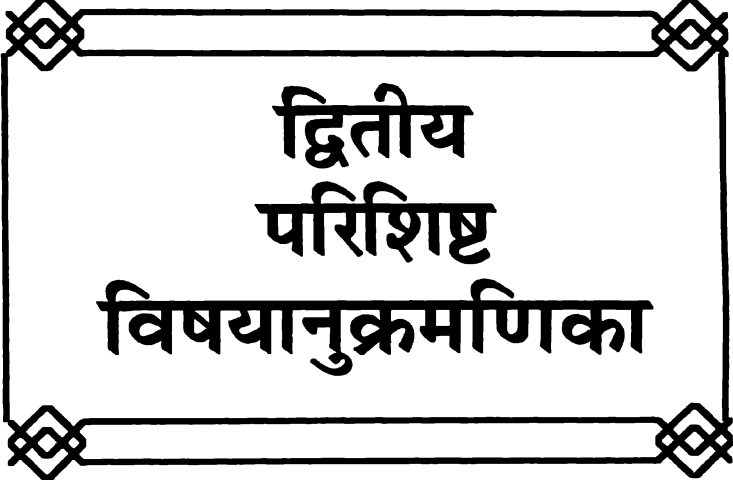
शु

27.	शुभाशुभानि कर्माणि ।	3	334

द्वितीय परिशिष्ट विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

[illegible]	[illegible]	[illegible]
30	100	अज्ञानी
31	121	अज्ञात-पिण्ड
32	135	अज्ञानी दुःख-भाजन
33	148	अज्ञानी दुःखी
34	147	आचरण जीवन में अपनाओ
35	223	आत्मविद् साधक
36	284	आत्मकर्म
37	3	आत्मा ही दुःखभोक्ता
38	82	आत्मा ही सामायिक
39	50	आहार की अनासक्ति
40	122	आहार क्यों ?
41	195	इतिवृत्त प्रमाण
42	127	इन्द्रिय-दमन
43	182	इन्द्रिय-विषय
44	83	उत्तम पुरूष वैडूर्यरत्नवत्
45	22	उपदेश के अयोग्य
46	159	उपयोगिता
47	70	उपेक्षा मत करो
48	154	ऊर्ध्व-लक्ष्य
49	12	एकत्व-भावना
50	196	एक-ऐतिहासिक सत्य
51	233	कठोर-वचन-त्याग
52	74	कथा
53	35	कर्मानुसारफल
54	88	कर्म-क्षय
55	101	कर्म
56	144	कर्म पीड़ित जीव
57	242	कर्मवाद
58	244	कर्मयोनि
59	246	कर्म-वेदना
60	255	कर्म-हेतु

[illegible]	[illegible]	[illegible]
181	108	भवान्तकर्ता
182	32	भावान्धकार
183	225	भिक्षाचरी में न दैन्य न कोप
184	226	भिक्षाचरी संहिता
185	162	मत बढ़ने दो
186	124	मन पर संयम
187	278	मनदर्पण, निर्वाण
188	198	मन के जीते जीत
189	205	मन-अश्व
190	243	मनुष्य-भव-प्राप्ति
191	111	मरण-शरण
192	64	मान-जय-प्रक्रिया
193	155	मिताहारी साधक
194	25	मिथ्यादृष्टि जीव
195	207	मिथ्यादृष्टि (असत्यप्ररूपक)
196	137	मित्रता
197	62	मित्रतानाशक
198	268	मुक्ति-मूल
199	215	मुनि कैसे चले ?
200	115	मृत्यु-विभीषिका
201	288	मृत्यु-भय
202	4	मैं सदा अकेला
203	259	मोक्ष का मूल
204	280	मोह-क्षय
205	281	मोहक्षय-सर्वक्षय
206	164	मोहदर्शी-गर्भदर्शी
207	276	मोह-कर्मक्षीण
208	178	मोक्ष-साधना
209	263	मोक्ष नहीं
210	248	मोक्ष

[illegible]	[illegible]	[illegible]
211	264	मोक्ष बिन निर्वाण नहीं
212	38	यथा वाणी तथा क्रिया
213	254	यश-संचय
214	51	रस-अलोलुप
215	258	रूप-आसक्ति
216	173	रोगी-परिचर्या
217	184	लक्षण सर्वोत्तम मानवता के
218	185	लक्ष्मी-निवास
219	39	लाभ-लोभ
220	40	लाभ से लोभ
221	103	लोभ-भय-मुक्त
222	59	लोभ, रंग मजीठ
223	67	लोभ-विजय
224	142	वचनवीर
225	130	वर्तमान महान्
226	23	वसुन्धरा
227	238	वन्दन समय याचना वर्जन
228	73	विकथा
229	28	विघ्न
230	61	विनयनाशक
231	86	विनयानुशासन
232	202	विषवल्ली
233	105	विषयासक्त दुःखी
234	199	विज्ञान और धर्म
235	71	वीतरागता
236	72	वीतराग-समभावी
237	16	व्रत-भ्रष्ट-अधोगति
238	113	व्यर्थ क्या ?
239	150	शरीर रक्षा क्यों ?
240	27	शुभाशुभ कर्म

271	201	स्नेह-पाश
272	21	स्वच्छन्दता
273	112	स्वकर्म-फल
274	89	स्वयंकृतदुःख
275	36	स्वल्प सुख भी नहीं
276	48	हिंसा से सर्वथा विरत
277	132	क्षमापना
278	129	क्षमा-फल
279	289	क्षुधा-वेदना
280	134	क्षुधा-सहिष्णु
281	240	त्रिधा-भिक्षा
282	269	त्रिरत्न
283	99	ज्ञानपूर्वक आचरण
284	107	ज्ञानी आत्मा
285	265	ज्ञान बिन चारित्र नहीं
286	167	ज्ञानमद
287	168	ज्ञान से मृदु
288	186	ज्ञानार्थी शिष्य
289	204	ज्ञानांकुश

तृतीय
परिशिष्ट
अभिधान राजेन्द्रः
पृष्ठ संख्या
अनुक्रमणिका
भाग-३

अभिधान राजेन्द्रः पृष्ठ संख्या अनुक्रमणिका

[illegible]	[illegible]
1	2
2	2
3	2
4	2
5	2
6	2
7	8
8	8
9	8
10	8
11	11
12	13
13	69
14	136
15	136
16	136
17	167
18	205
19	205
20	222
21	222
22	222
23	222
24	331
25	332
26	332
27	334
28	338

[illegible]	[illegible]	[illegible]
29	342	
30	342	
31	342	
32	342	
33	342	
34	342	
35	342	
36	342-2549	
37	354	
38	372	
39	387	
40	387	
41	388	
42	388	
43	388	
44	389	
45	389	
46	389	
47	389	
48	390	
49	390	
50	390	
51	390	
52	391	
53	391	
54	391	
55	391	
56	392	
57	396	
58	396	

[illegible]	[illegible]
59	396
60	399
61	399
62	399
63	399
64	399
65	399
66	399
67	399
68	399
69	399
70	400
71	401
72	401
73	402
74	402
75	407
76	413
77	418
78	428
79	428
80	449
81	497
82	497
83	517-613
84	518
85	523
86	523
87	525
88	525

89	526
90	551
91	551
92	551
93	551
94	552
95	553
96	554
97	554
98	555
99	556
100	557
101	557
102	557
103	557
104	557
105	557
106	558
107	558
108	558
109	608
110	608
111	608
112	610
113	610
114	610
115	610
116	610
117	611
118	611

119	612
120	612
121	612
122	612
123	612
124	613
125	613
126	613
127	613
128	686
129	692
130	703
131	703
132	715
133	739
134	739
135	750
136	750
137	750
138	750
139	750
140	751
141	751
142	751
143	751
144	751
145	751
146	751
147	751
148	751

[illegible]	[illegible]	[illegible]
149	751	
150	752	
151	752	
152	752	
153	752	
154	752	
155	755	
156	755	
157	767	
158	794	
159	804	
160	806	
161	807	
162	807	
163	808	
164	840	
165	849	
166	855	
167	855	
168	855	
169	857	
170	859	
171	877	
172	877	
173	894	
174	899	
175	899	
176	902	
177	903	
178	903	

179	906	
180	907	
181	908	
182	908	
183	912	
184	934	
185	936	
186	936	
187	938-940	
188	940	
189	943	
190	944	
191	944	
192	945	
193	945	
194	961	
195	961	
196	961	
197	962	
198	962	
199	962	
200	963	
201	963	
202	963	
203	964	
204	964	
205	964	
206	964	
207	964	
208	965	

209	965
210	965
211	965
212	965
213	965
214	966
215	968
216	970
217	970
218	971
219	971
220	973
221	980
222	981
223	981
224	981
225	981
226	982
227	982
228	982
229	982
230	983
231	983
232	983
233	986
234	989
235	989
236	990
237	990
238	990

[illegible]	[illegible]
239	991
240	1006
241	1051-1052
242	1051
243	1052
244	1052
245	1052
246	1052
247	1053
248	1053
249	1053
250	1053
251	1053
252	1053
253	1053
254	1054
255	1054
256	1057
257	1058
258	1106
259	1126
260	1127
261	1127
262	1128
263	1128
264	1128
265	1128
266	1128
267	1128
268	1143
269	1145
270	1150
271	1150
272	1167

[illegible]	[illegible]
273	1167
274	1171
275	1171
276	1184
277	1184
278	1184
279	1184
280	1184
281	1184
282	1184
283	1209
284	1336
285	1343
286	1359
287	1359
288	1359
289	1359

चतुर्थ
परिशिष्ट
जैन एवं जैनेतर ग्रन्थः
गाथा/श्लोकादि
अनुक्रमणिका

आचारांग सूत्र

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
181	1	1	5	41
182	1	2	1	62
133	1	2	4	85
11	1	3	4	–
164	1	3	4	130
7	1	5	1	151
8	1	5	4	162
9	1	5	4	162
10	1	5	4	162
17	1	5	5	162
29	1	6	1	180
30	1	6	1	180
31	1	6	1	180
32	1	6	1	180
33	1	6	1	180
34	1	6	1	180
233	2	1	1	6

आचारांग वृत्ति – शीलांक

सूक्ति क्रम	पृष्ठ
4	190

आवश्यक बृहद्वृत्ति

सूक्ति क्रम	अध्ययन
268 •	3

आवश्यक निर्युक्ति

सूक्ति क्रम	अध्ययन	गाथा
260	1	95
261	1	96

सूक्ति क्रम	[illegible]	गाथा
70	–	120
86	–	867
256	2	1089
257	2	1107
84	3	1133-1134
87	3	1243(43)
88	3	1244-1431
75	5	1477

आवश्यक निर्युक्ति भाष्य

सूक्ति क्रम	गाथा
191	1287

आगमीय सूक्तावली

सूक्ति क्रम	सूक्तानि	पृष्ठ
36	–	25

उत्तराध्ययन सूत्र

सूक्ति क्रम	अध्ययन	गाथा
217	1	31
13	1	32
155	2	5
156	2	5
241	3	1
242	3	2
245	3	3
244	3	4
246	3	6
243	3	7
252	3	8
253	3	8

247	3	9
251	3	9
249	3	10
250	3	10
248	3	12
254	3	13
255	3	13
135	6	1
138	6	1
136	6	2
137	6	2
139	6	3
143	6	4
140	6	6
144	6	6
145	6	6
146	6	7
147	6	8
142	6	9
141	6	10
148	6	11
153	6	12
150	6	13
154	6	13
151	6	15
152	6	15
43	8	1
41	8	2

[illegible]	[illegible]	[illegible]
42	8	2
47	8	4
46	8	5
44	8	6
45	8	7
49	8	8
48	8	10
50	8	11
51	8	11
55	8	14
53	8	15
52	8	16
554	8	16
39	8	17
40	8	17
56	8	19
194	23	25
195	23	26
196	23	26
199	23	31
197	23	32
198	23	36
200	23	38
201	23	43
202	23	48
203	23	53
204	23	56
205	23	58

सूक्ति क्रम	अध्ययन	गाथा
206	23	63
207	23	63
208	23	68
212	23	68
209	23	71
210	23	73
213	23	78
211	23	81
214	23	84
80	24	23
183	28	11
263	28	30
264	28	30
265	28	30
266	28	30
165	29	11
79	29	14
78	29	14
132	29	19
71	29	38
72	29	38
129	29	48
38	29	53
270	29	53
128	29	69
262	31	2
267	31	3

उत्तराध्ययन सूत्र सटीक

सूक्ति क्रम	अध्ययन
27	1

ओघ निर्युक्ति

सूक्ति क्रम	गाथा
83	772

अंगचूलिका

सूक्ति क्रम	अध्ययन
77	5

गच्छाचार पयन्ना

सूक्ति क्रम	अधिकार	गाथा
176	2	44-45

चाणक्य नीति दर्पण (चाणक्य शास्त्र)

सूक्ति क्रम	अध्याय	श्लोक
98	6	7

दशाश्रुतस्कंध

सूक्ति क्रम	अध्ययन	गाथा
278	5	1
282	5	2
279	5	4
281	5	12
280	5	13
276	5	14
277	5	15

दसपयन्ना सटीक

सूक्ति क्रम	गाथा
269	79

दशवैकालिक सूत्र

सूक्ति क्रम	अध्ययन	उद्देशक	गाथा
272	2	–	2
273	2	–	3
99	4	–	33
100	4	–	33
215	5	1	2
226	5	1	8
228	5	1	9
227	5	1	12
230	5	1	14
231	5	1	14
229	5	1	15
232	5	1	16
234	5	1	27
235	5	1	27
239	5	1	52
216	5	2	4
218	5	2	6
219	5	2	6
221	5	2	25
222	5	2	26
223	5	2	26
225	5	2	27
224	5	2	28
236	5	2	29
238	5	2	29
237	5	2	30
134	8	—	29
68	8	—	36

सूक्ति क्रम	अध्ययन	उद्देशक	गाथा
60	8	—	37
61	8	—	37
62	8	—	37
63	8	—	37
64	8	—	38
65	8	—	38
66	8	—	38
67	8	—	38
69	8	—	39
188	9	1	13

दशवैकालिक निर्युक्ति

सूक्ति क्रम	गाथा
74	210
73	211
285	215

दशवैकालिक चूलिका

सूक्ति क्रम	चूलिका	गाथा
16	1	13
15	1	14
14	1	16

धर्मबिन्दु सटीक

सूक्ति क्रम	अध्याय	सूत्र	श्लोक
174	2	7	46
175	2	7	47
187	5	3	154

धर्मरत्न प्रकरण सटीक

सूक्ति क्रम	अधिकार	पृष्ठ
184	1	40

धर्मसंग्रह सटीक

सूक्ति क्रम	अधिकार
37	1
192	2

नयोपदेश सटीक

सूक्ति क्रम	श्लोक
97	129

निशीथ भाष्य

सूक्ति क्रम	गाथा
271	37
171	2970
172	2971
161	4803
162	4804
163	4808
220	4159
177	5248
178	5250
166	6221
167	6222
168	6222

नीतिशतक

सूक्ति क्रम	श्लोक
180	54

पर्वकथा संचय

सूक्ति क्रम	पृष्ठ
283	149

पातञ्जल योगदर्शन

सूक्ति क्रम	अध्याय	सूत्र
95	2	1

पंचाशक सटीक

सूक्ति क्रम	विवरण	गाथा
190	5	–
76	16	3

बृहत्कल्पवृत्ति सभाष्य

सूक्ति क्रम	उद्देश
22	1

बृहदावश्यक भाष्य

सूक्ति क्रम	गाथा
160	937
159	2114
23	3254
169	4342

बृहत्कल्प भाष्य

सूक्ति क्रम	गाथा
21	3251
20	3253
170	4363

ब्रह्मबिन्दूपनिषद

सूक्ति क्रम	श्लोक
149	2

भगवती सूत्र

सूक्ति क्रम	शतक	उद्देश	सूत्र
82	1	9	21(4)
81	1	9	21(6)
284	16	2	17(1)

महानिशीथ सूत्र

सूक्ति क्रम	अध्ययन	गाथा
193	5	12

योगशास्त्र

सूक्ति क्रम	प्रकाश	गाथा
189	3	125-126

विशेषावश्यक भाष्य

सूक्ति क्रम	गाथा
259	3
186	937
85	3468

विशेषावश्यक भाष्य बृहद्वृत्ति

सूक्ति क्रम	पृष्ठ
28	17

व्यवहार भाष्य पीठिका

सूक्ति क्रम	अध्ययन	गाथा
157	4	101

सन्मति तर्क

सूक्ति क्रम	काण्ड	श्लोक
158	3 .	47

सुभाषित सूक्त संग्रह

सूक्ति क्रम	सूक्तानि	श्लोक
286	37	4
287	37	4
288	37	4
289	37	4

सूत्रकृतांग सूत्र

सूक्ति क्रम	प्रथम श्रुत.	अध्ययन	उद्देशक	गाथा
24	1	1	2	27
26	1	1	2	31
25	1	1	2	32
18	1	1	3	10

सूक्ति क्रम	प्रथम श्रुत.	अध्ययन	उद्देशक	गाथा
19	1	1	3	10
2	1	2	3	17
1	1	2	3	18
5	1	2	3	18
6	1	2	3	18
130	1	2	3	19
131	1	2	3	19
173	1	3	3	13
3	1	5	2	22
111	1	7	3	—
109	1	7	4	—
110	1	7	4	—
115	1	7	10	—
116	1	7	10	—
112	1	7	11	—
114	1	7	11	—
117	1	7	20	—
118	1	7	23	—
119	1	7	27	—
120	1	7	27	—
121	1	7	27	—
123	1	7	28	—
122	1	7	29	—
124	1	7	29	—
127	1	7	29	—
125	1	7	30	—
126	1	7	30	—
12	1	10	12	—
35	1	12	—	—

सूक्ति क्रम	प्रथम श्रुत.	अध्ययन	उद्देशक	गाथा
105	1	12	14	—
101	1	12	15	—
102	1	12	15	—
103	1	12	15	—
104	1	12	15	—
108	1	12	16	—
106	1	12	18	—
107	1	12	19	—

सूत्रकृतांग सूत्र सटीक

सूक्ति क्रम	प्रथम श्रुतस्कन्ध	अध्ययन	उद्देशक
185	1	3	2
113	1	7	—

स्थानांग सूत्र सटीक

सूक्ति क्रम	अध्ययन	स्थान(ठाणा)	उद्देशक	सूत्र
89	3	3	2	174
58	4	4	2	293(1)
57	4	4	2	293(2)
59	4	4	2	293(3)
179	4	4	4	370

हितोपदेश

सूक्ति क्रम	कथासंग्रह	श्लोक
96	1 मित्रलाभ	167
240	2	20

ज्ञानसार

सूक्ति क्रम	अष्टक	श्लोक
275	8	3
274	8	8
92	9	1

93	9	2
91	9	3
90	9	4
94	9	7

ज्ञाता धर्मकथा

सूक्ति क्रम	प्र. श्रुतस्कन्ध	अध्ययन	गाथा
258	1	17	36

पञ्चम परिशिष्ट

'सूक्ति-सुधारस' में प्रयुक्त संदर्भ-ग्रंथ सूची

पञ्चम परिशिष्ट

१ आचारांग सूत्र
२ आचारांगवृत्ति
३ आगमीय सूक्तावली
४ आवश्यक बृहद्वृत्ति
५ आवश्यक निर्युक्ति
६ आवश्यक निर्युक्ति भाष्य
७ उत्तराध्ययनसूत्र
८ उत्तराध्ययनसूत्र सटीक
९ उपदेशमाला
१० ओघनिर्युक्ति
११ अंगचूलिका
१२ गच्छाचारपयन्ना
१३ चाणक्यनीति दर्पण (चाणक्य शास्त्र)
१४ दशाश्रुतस्कन्ध
१५ दसपयन्ना
१६ दशवैकालिक सूत्र - शय्यंभवसूरि
१७ दशवैकालिक चूलिका
१८ दशवैकालिक निर्युक्ति
१९ धर्मबिन्दु-आचार्य हरिभद्र-श्री मुनिचन्द्रसूरि रचित टीका
२० धर्मरत्न प्रकरण सटीक
२१ धर्मसंग्रह सटीक
२२ नयोपदेश सटीक
२३ निशीथभाष्य
२४ नीतिशतक-भर्तृहरी
२५ पर्वकथा संचय
२६ पातञ्जल योगदर्शन
२७ पञ्चाशक सटीक विवरण
२८ बृहत्कल्पवृत्ति भाष्य
२९ बृहत्कल्प भाष्य
३० बृहदावश्यक भाष्य
३१ ब्रह्मबिन्दूपनिषद

३२ भगवतीसूत्र

३३ महानिशीथसूत्र

३४ योगदृष्टि समुच्चय

३५ योगशास्त्र-आचार्य हेमचन्द्र

३६ विशेषावश्यक भाष्य

३७ विशेषावश्यक भाष्य बृहत्वृत्ति

३८ व्यवहारभाष्यपीठिका

३९ सन्मतितर्क - आचार्य सिद्धसेनदिवाकर

४० सुभाषित सूक्तसंग्रह

४१ सूत्रकृतांग सूत्र

४२ सूत्रकृतांग सटीक

४३ स्थानांगसूत्र सटीक

४४ हितोपदेश

४५ ज्ञानसार - उपाध्याय यशोविजय

४६ ज्ञाताधर्म कथा

विश्वपूज्य प्रणीत
सम्पूर्ण वाङ्मय

6

विश्वपूज्य प्रणीत सम्पूर्ण वाङ्मय

अभिधान राजेन्द्र कोष [1 से 7 भाग]
अमरकोष (मूल)
अघट कुँवर चौपाई
अष्टाध्यायी
अष्टाह्निका व्याख्यान भाषान्तर
अक्षय तृतीया कथा (संस्कृत)
आवश्यक सूत्रावचूरी टब्बार्थ
उत्तमकुमारोपंन्यास (संस्कृत)
उपदेश रत्नसार गद्य (संस्कृत)
उपदेशमाला (भाषोपदेश)
उपधानविधि
उपयोगी चौवीस प्रकरण (बोल)
उपासकदशाङ्गसूत्र भाषान्तर (बालावबोध)
एक सौ आठ बोल का थोकड़ा
कथासंग्रह पञ्चाख्यानसार
कमलप्रभा शुद्ध रहस्य
कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म (श्लोक व्याख्या)
करणकाम धेनुसारिणी
कल्पसूत्र बालावबोध (सविस्तर)
कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी
कल्याणमन्दिर स्तोत्रवृत्ति (त्रिपाठ)
कल्याण (मन्दिर) स्तोत्र प्रक्रिया टीका
काव्यप्रकाशमूल
कुवलयानन्दकारिका
केसरिया स्तवन
खापरिया तस्कर प्रबन्ध (पद्य)
गच्छाचार पयन्नावृत्ति भाषान्तर
गतिषष्ठ्या - सारिणी

ग्रहलाघव
चार (चतु:) कर्मग्रन्थ - अक्षरार्थ
चन्द्रिका - धातुपाठ तरंग (पद्य)
चन्द्रिका व्याकरण (2 वृत्ति)
चैत्यवन्दन चौवीसी
चौमासी देववन्दन विधि
चौवीस जिनस्तुति
चौवीस स्तवन
ज्येष्ठस्थित्यादेशपट्टकम्
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति बीजक (सूची)
जिनोपदेश मंजरी
तत्त्वविवेक
तर्कसंग्रह फक्किका
तेरहपंथी प्रश्नोत्तर विचार
द्वाषष्टिमार्गणा - यन्त्रावली
दशाश्रुतस्कन्ध सूत्रचूर्णी
दीपावली (दिवाली) कल्पसार (गद्य)
दीपमालिका देववन्दन
दीपमालिका कथा (गद्य)
देववंदनमाला
घनसार - अघटकुमार चौपाई
ध्रष्टर चौपाई
धातुपाठ श्लोकबद्ध
धातुतरंग (पद्य)
नवपद ओली देववंदन विधि
नवपद पूजा
नवपद पूजा तथा प्रश्नोत्तर
नीतिशिक्षा द्वय पच्चीसी
पंचसप्तति शतस्थान चतुष्पदी
पंचाख्यान कथासार
पञ्चकल्याणक पूजा

पञ्चमी देववन्दन विधि
पर्यूषणाष्टह्निका - व्याख्यान भाषान्तर
पाइय सद्दम्बुही कोश (प्राकृत)
पुण्डरीकाध्ययन सज्झाय
प्रक्रिया कौमुदी
प्रभुस्तवन - सुधाकर
प्रमाणनय तत्त्वालोकालंकार
प्रश्नोत्तर पुष्पवाटिका
प्रश्नोत्तर मालिका
प्रज्ञापनोपाङ्गसूत्र सटीक (त्रिपाठ)
प्राकृत व्याकरण विवृत्ति
प्राकृत व्याकरण (व्याकृति) टीका
प्राकृत शब्द रूपावली
बारेव्रत संक्षिप्त टीप
बृहत्संग्रहणीय सूत्र चित्र (टब्बार्थ)
भक्तामर स्तोत्र टीका (पंचपाठ)
भक्तामर (सान्वय - टब्बार्थ)
भयहरण स्तोत्र वृत्ति
भर्त्तरीशतकत्रय
महावीर पंचकल्याणक पूजा
महानिशीथ सूत्र मूल (पंचमाध्ययन)
मर्यादापट्टक
मुनिपति (राजर्षि) चौपाई
रसमञ्जरी काव्य
राजेन्द्र सूर्योदय
लघु संघयणी (मूल)
ललित विस्तरा
वर्णमाला (पाँच कक्का)
वाक्य-प्रकाश
बासठ मार्गणा विचार
विचार - प्रकरण

विहरमाण जिन चतुष्पदी
स्तुति प्रभाकर
स्वरोदयज्ञान - यंत्रावली
सकलैश्वर्य स्तोत्र सटीक
सद्य गाहापयरण (सूक्ति-संग्रह)
सप्ततिशत स्थान-यंत्र
सर्वसंग्रह प्रकरण (प्राकृत गाथा बद्ध)
साधु वैराग्याचार सज्झाय
सारस्वत व्याकरण (3 वृत्ति) भाषा टीका
सारस्वत व्याकरण स्तुबुकार्थ (1 वृत्ति)
सिद्धचक्र पूजा
सिद्धाचल नव्वाणुं यात्रा देववंदन विधि
सिद्धान्त प्रकाश (खण्डनात्मक)
सिद्धान्तसार सागर (बोल-संग्रह)
सिद्धहैम प्राकृत टीका
सिंदूरप्रकर सटीक
सेनप्रश्न बीजक
शंकोद्धार प्रशस्ति व्याख्या
षड् द्रव्य विचार
षड्द्रव्य चर्चा
षडावश्यक अक्षरार्थ
शब्दकौमुदी (श्लोक)
'शब्दाम्बुधि' कोश
शांतिनाथ स्तवन
हीर प्रश्नोत्तर बीजक
हैमलघुप्रक्रिया (व्यंजन संधि)
होलिका प्रबन्ध (गद्य)
होलिका व्याख्यान
त्रैलोक्य दीपिका - यंत्रावली ।

लेखिकाद्वय की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

१. आचाराङ्ग का नीतिशास्त्रीय अध्ययन (शोध प्रबन्ध)
लेखिका : डॉ. प्रियदर्शनाश्री, एम. ए. पीएच.डी.
२. आनन्दघन का रहस्यवाद (शोध प्रबन्ध)
लेखिका : डॉ. सुदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.डी.
३. अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस (प्रथम खण्ड)
४. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति सुधारस (द्वितीय खण्ड)
५. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (तृतीय खण्ड)
६. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (चतुर्थ खण्ड)
७. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (पंचम खण्ड)
८. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (षष्ठम खण्ड)
९. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (सप्तम खण्ड)
१०. 'विश्वपूज्य' : (श्रीमद्राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ) (अष्टम खण्ड)
११. अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका (नवम खण्ड)
१२. अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम (दशम खण्ड)
१३. राजेन्द्र सूक्ति नवनीत (एकादशम खण्ड)
१४. जिन खोजा तिन पाइयाँ (प्रथम महापुष्प)
१५. जीवन की मुस्कान (द्वितीय महापुष्प)
१६. सुगन्धित-सुमन (FRAGRANT-FLOWERS) (तृतीय महापुष्प)

प्राप्ति स्थान :
श्री मदनराजजी जैन
द्वारा - शा. देवीचन्दजी छगनलालजी
आधुनिक वस्त्र विक्रेता, सदर बाजार,
पो. भीनमाल-३४३०२९
जिला-जालोर (राजस्थान)
☎ (02969) 20132